प्रकृति की नीति

सूचीपत्र

१ सिद्धान्त की व्याख्या १

२ धर्म और उपदेश ४६

३ फुटकर उपदेश ५१

४ मौत १०६

PREFACE

FOUR years ago, my esteemed friend, Dr Abinash Chandra Banerji, the eminent physician in Allahabad, gave me a copy of M Deshumbert's Ethics of Nature and requested me to undertake a Hindi translation of it A careful study of the book showed that the morals had very much in common with the teachings of our own *rishis* and were calculated to dispel the illusion of students of modern science, who believe that man is entirely different from the Nature which surrounds him and that the so-called rules of morality have been concocted by him for the convenience of the society to which he belongs. M. Deshumbert's book deserves to be carefully studied by all who have the welfare of their community at heart It explains in a lucid manner that our best *dharmas*, in a strictly logical sense, were dictated to us by Nature herself, and by strictly following them we shall secure our own happiness as well as the happiness of our community

The present translation has been kindly published by the Indian Press, Ltd, Allahabad, to whom my acknowledgments are due

203, Muthiganj,
Allahabad
10th December, 1923

SITA RAM

प्रकृति की नीति

१—सिद्धान्त की व्याख्या

नीति क्या है ? लोग कहते हैं कि यह वह विद्या है जो हमको धर्म का मार्ग दिखलाती है और बुरी राह पर जाने से रोकती है। किन्तु क्या अच्छा है और क्या बुरा ? अच्छा और बुरा जानने की कोई सरल रीति नहीं है। हमने जो नियम बनाये हैं वह अटूट नहीं हैं। वह समय के साथ बदलते रहते हैं और एक ही समय में भी, हर जगह और हर जाति में, एक नहीं होते। आजकल भी एक समाज और देश की बहुत सी रस्में दूसरी समाज और देश में अनुचित समझी जाती हैं। एक देश में भी अमीर और ग़रीब के लिए समान नियम नहीं हैं।

ढाई हज़ार वर्ष हुए, चीन के विद्वान् कनफूशी ने कहा था कि "तुम दूसरों के साथ वह बर्ताव न करो जिसको कि तुम नहीं चाहते कि दूसरे तुम्हारे साथ करें। तुम्हारा मन और तुम्हारी आत्मा ही अच्छे-बुरे का ज्ञान तुमको दे सकती है। जो बात तुमको जैसी मालूम होती है वैसी ही वह दूसरों

को भी जान पड़ती है।" यह कहावत तब से बहुत प्रसिद्ध है, परन्तु न तो यह हमको ठीक रास्ता बताती और न बता ही सकती है; क्योंकि बहुधा हमको यह नहीं मालूम होता कि हमारा भला किस बात मे है। जब हम अपना ही भला-बुरा नहीं जानते तब दूसरों का भला-बुरा कैसे जान सकते हैं?

लावो जू (Lao Tzu), जो बड़ा विद्वान् चीनी और कनफूशी का समकालीन था, कहता है कि "अच्छों के साथ तो हमको भलाई करनी ही चाहिए; परन्तु जो अच्छे नहीं हैं, जो बुरे हैं, उनके साथ भी हमको भलाई करनी चाहिए, जिससे वे सुधर जायँ।"

हमको जब यह नहीं मालूम कि क्या अच्छा है और क्या बुरा तब ऐसा कहने से कुछ लाभ नहीं हो सकता। हमको यह मालूम होना चाहिए कि क्या भला है और क्या बुरा। तो हम बुरा और भला कैसे पहचान सकते हैं? क्या हमारा अन्तःकरण इसका ठीक-ठीक निर्णय कर सकता है? हमारे अन्तःकरण मे जो भाव उत्पन्न होते हैं वे कई बातों पर निर्भर हैं और देश, काल, और जाति तथा व्यक्ति-विशेष के व्यवसाय, उसकी योग्यता, शिक्षा, विद्या, आचरण आदि का उन पर प्रभाव पड़ता है। एक ही व्यक्ति मे भी उसके अन्तःकरण के भाव में समय-समय पर भेद पड़ जाता है। बालक और वृद्ध का मन एक सा नही होता।

कुछ जङ्गली जातियों में बुड्ढे बाप को मार डालना लड़कों

का धर्म है। उनका विश्वास है कि स्वर्ग पहुँचने के लिए एक बड़े बीहड़ रास्ते से जाना पड़ता है और दुर्बल मनुष्य इस मार्ग को पार नहीं कर सकता। इससे यह लोग जब किसी की उमर ढलने लगती है तब उसे मार डालते हैं। यह लोग इस काम को पाप नहीं समझते और शुद्ध अन्तःकरण से अपने बुड्ढों को निपट निर्बल होने के पहले ही मार डालते हैं। यदि कोई ऐसा न करे तो उसके मन को अवश्य वेदना होगी। वह समझेगा कि मैंने अपने गुरुजनों के प्रति अपना धर्म नहीं निवाहा। सी. फ्लेमेरियन (C. Flammarion) कहता है कि "मलय प्रायद्वीप की बहुत सी जातियों में बाप को मारना धर्म है और जो इस धर्म का पालन नहीं करता वह नीच समझा जाता है। यह लोग अपने बाप को स्वर्ग भेजने के लिए वृद्ध होने से पहले ही उसका सिर काट लेते हैं।"

पुराने समय में मनुष्य का मांस खाने की प्रथा कई देशों में थी। विजयी अपने शत्रु का मांस खाना अपना धर्म समझते थे। उनका विश्वास था कि इस रीति से उनके शत्रु की वीरता उनमें आ जाती है। जो कोई ऐसे भोज में सम्मिलित नहीं होता था वह नीच और जाति का शत्रु कहलाता था। उन्नति-शील मेक्सिकन लोग शत्रु को खा जाना अपना धर्म मानते थे। जिसका अन्तःकरण जितना ही शुद्ध होता था और जो जितना ही बड़ा देशभक्त होता था वह उतना ही ऐसे भोज के लिए व्यग्र रहता था।

प्राचीन समय मे दास रखने की प्रथा प्रायः सभी देशों मे थी। रूम, एथेन्स आदि नगरों मे दासों की बड़ी-बड़ी दुकानें लगती थीं। यह काम बुरा नहीं समझा जाता था। यूनान के बड़े-बड़े विद्वान् भी इसको पाप नहीं समझते थे। बहुत समय के पीछे यह कुप्रथा यूरप से उठी, परन्तु कृषक-दासत्व के रूप में यह १८ वीं शताब्दी के अन्त तक फ़ान्स में बनी रही। यह कुप्रथा यूरप से उठकर अमरीका मे जा पहुँची। वहाँ भी दास पर स्वामी का पूरा अधिकार होता था और दास पालतू जानवर की भाँति रक्खे जाते थे।

सभ्य देशों ने, अभी थोड़े ही दिन हुए, अपने राज से इस कुप्रथा को हटाया है। इतने दिनों तक इन देशों के निवासियों का अन्तःकरण कहाँ था ?

इँगलैण्ड ने अपने राज से इस प्रथा को सन् १८३३ मे हटाया,

स्वेडन ने	...	...	...	१८४६ में
फ़ान्स ने	...	...	...	१८४८ में
डेनमार्क ने	...	...	...	१८४८ मे
पुर्तगाल ने	...	...	...	१८५६ मे
हालैण्ड ने	...	...	...	१८६० मे
अमरीका ने	...	...	...	१८६६ मे
स्पेन ने	...	...	...	१८७२ में
ब्राज़ील ने	...	...	...	१८८८ में

इन सब देशों के दास-रखनेवालों मे बहुत से लोग धर्मात्मा, दयालु और नीतिपरायण थे; परन्तु उनका अन्तःकरण इस विषय पर चुप था। वह लोग शुद्ध मन से इसको अच्छा समझते थे और मरते समय भी उनको कोई पश्चात्ताप नहीं होता था; वह शुद्ध अन्तःकरण से समझते थे कि उन्होंने कोई पाप नहीं किया। यह प्रथा बहुत दिनों तक बनी रही। कुछ समय हुआ, लोगों का ध्यान इसकी ओर गया और वह सोचने लगे कि मनुष्य को पशु की तरह रखना पाप है। उन्होंने देखा कि दासों के साथ पाशविक व्यवहार होता है; उन पर कोड़े पड़ते हैं; माँ की गोद से बच्चे छीन लिये जाते हैं और पत्नी पति से अलग कर दी जाती है। यह देखकर उनका दिल उमड़ आया। उनको अपना अन्याय दिखाई पड़ा। उन्होंने अन्तःकरण से—मन से—इस कुप्रथा को मिटाने की चेष्टा की और सफल हुए।

अभी थोड़े ही दिनों की बात है कि जिनका धार्मिक विषय पर जनता से भेद होता था वह जीते जी जला दिये जाते थे और इस पाप के करनेवाले शुद्ध हृदय से समझते थे कि हम उचित कर रहे हैं। न्यायाधीश शुद्ध अन्तःकरण से डाइनों को जलाने की आज्ञा देते थे। न्यायकर्ता भी ऐसा नियम बनाने में कुछ संकोच नहीं करते थे। उनका अन्तः-करण ऐसे नियम को बुरा नहीं कहता था। अभी तक बहुत से लोग भलाई करने की इच्छा से बुराई कर डालते हैं।

सबका अन्तःकरण एक-सा नहीं होता। जिसको एक मनुष्य अच्छा समझता है उसी को दूसरा मनुष्य पाप कहता है; इसलिए हमारा अन्तःकरण भले-बुरे का ठीक-ठीक निर्णय करने मे समर्थ नहीं है। हम सभी अन्तःकरण से ठीक और धर्म की राह पर चलना चाहते हैं, कठिनता केवल अच्छा और बुरा जानने में होती है।

धर्म-सञ्चालन करनेवाले और नीति-शास्त्र जाननेवाले यह नहीं समझते कि मनुष्य भी इस विश्व का एक भाग है। उनका मत है कि मनुष्य सबसे भिन्न है और उसका शरीर प्रकृति के नियमों को नहीं मानता। मनुष्य एक ऐसा पदार्थ है जिसका मूल-तत्त्व विश्व की वस्तुओं से भिन्न है और उनसे श्रेष्ठ है। यह उनकी बड़ी भूल है। वह यह नहीं जानते कि जो कुछ है वह विश्व और प्रकृति का अंश है और मनुष्य भी प्रकृति ही के अनुसार चल सकता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि प्रकृति के नियम क्या हैं? हमसे प्रकृति क्या कराना चाहती है? इसका उत्तर हम संसार के अन्य जीवों को ध्यान से देखने से ही दे सकते हैं। प्रकृति ही से हमको इसका उत्तर मिल सकता है। हम जिधर देखते हैं उधर जीव ही जीव दिखाई देते हैं। संसार—विश्व—जीवों से परिपूर्ण है। छोटे-छोटे कीटाणु हर जगह हमारे शरीर मे और राख और धूल तक मे भरे पड़े हैं। किन्तु

इनके अतिरिक्त पृथ्वी पर, पानी मे, और हवा में अनेक जीव हैं। जहाँ कहीं कोई जीव रह सकता है वहाँ जीव अवश्य होता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक जीव जान-बूझकर या अनजाने मे सदा जीवित रहने की चेष्टा किया करता है। अपना और अपनी जाति का जीवन बढ़ाने के लिए प्रत्येक प्राणी उद्योग करता है।

पेड़ों को देखो। प्रत्येक पेड़ में इतने बीज उत्पन्न होते हैं तब भी पेड़ उनके उगाने के लिए, जितना हो सकता है, प्रयत्न करता है। यदि एक पेड़ के सब बीज उसी के नीचे गिर जायँ तो उस बीज के ढेर से बहुत कम पेड़ होंगे। स्थान के अभाव से एक पौधा दूसरे को दबा लेगा और कोई भी ठीक-ठीक न उग सकेगा। इसके अतिरिक्त ऋतु के पेड़ों को छोड़कर बहुत से पेड़ों के नीचे सूरज की गरमी और प्रकाश न पहुँचने से पेड़ उग भी नहीं सकते। इसलिए यह परम आवश्यक है कि पेड अपने बीज किसी न किसी तरह दूर तक छिटका दें। बहुतेरे बीजों के छोटे-छोटे पंख होते हैं। यह बीज हवा से उड़कर दूर तक फैल जाते हैं। कुछ पेड़ों के बीज छोटे और फल के भीतर होते हैं। इन बीजों के ऊपर एक मोटा छिलका होता है। जानवर फल को तो खा जाते हैं किन्तु बीज को पचा नहीं सकते। बीज ज्यों का त्यों मल के साथ निकल आता है। इस तरह जहाँ बीज गिरता है वहाँ उसको थोड़ी सी खाद भी मिल जाती है। अंगूर, रसभरी, अंजीर आदि के बीज इसी भाँति के होते हैं।

गुलमेहँदी आदि कई पेड़ों मे बीजकोश इस ज़ोर से फटता है कि बीज दूर तक छिटक जाते हैं। कुछ घास और लताओं के बीजों मे काँटे या हुक होते हैं जिससे वह जानवरों के पावों मे चिपट जाते हैं और इस तरह जानवर उन्हें दूर ले जाते हैं और बीज को इधर-उधर छिटका देते हैं।

ऐसे बहुत से उपायों से पेड़ अपनी जाति की रक्षा करते और उसे दूर-दूर फैलाते हैं। किन्तु वृक्षों के शत्रु इतने अधिक हैं कि यह सब होने पर भी यदि अगणित बीज न हो तो बहुत से पेड़ नष्ट हो जायँ।

यही दशा मछलियों की है। एक मछली लाखों अण्डे देती है। काड मछली ७० लाख तक अण्डे देती है।

कीड़े-मकोड़े भी बहुतायत से अण्डे-बच्चे पैदा करते हैं। एक साल में ही एक मादा कीड़ा १ लाख से अधिक बच्चे पैदा कर सकती है। हक्सले (Huxley) ने हिसाब लगाया है कि एक ग्रीन फ्लाई (नीली मक्खी) से दस पीढ़ी मे दस खरब मक्खियाँ पैदा हो सकती हैं।

हम देखते हैं कि क्या जानवर, क्या पेड़, क्या कीड़े सभी जितने ही अधिक उनके बच्चे मरते हैं उतने ही अधिक बच्चे पैदा करते हैं। यह बहुतायत जाति को विनाश से बचाने के लिए होती है। छोटे-छोटे कीड़े, पेड़ आदि अपने घाव बहुत जल्दी भर लेते हैं। पेड़ की डाल काट देने से उसकी कोई विशेष क्षति नहीं होती और यदि डाल या टहनी अच्छी जगह

लग जाय तो वह जड़ पकड़ लेती है और उससे एक पूरा पेड़ निकल आता है। पेड़ों की अद्भुत शक्ति के बारे में हम दो-एक रोचक उदाहरण यहाँ देते हैं।

सन् १८३० में जब फ्रेंच लोग अलजीरिया (Algeria) मे उतरे तव उन्होंने एक जङ्गल में डेरा डालना निश्चय किया। फ्रेंच सिपाही जाड़े भर पेड़ों को काटते-छाँटते रहे। मार्च मे उन्होंने अपनी तलवारों से उनकी सब छोटी-छोटी डालियाँ काट डालीं। पेड़ों में अच्छी तरह फूल लगे; कोई पेड़ ऐसा न था जो अच्छी तरह न फूला हो।

सन् १९०३ मे ला चेोसी सर-मार्न (La Chaussee-sur Marne) में आग लगी और बहुत से मकान जल गये। एक सेव के बाग़ मे भी आग फैल गई और पाँच पंक्तियाँ भस्म हो गईं। छठी पंक्ति मे बहुत सी डालियाँ झुलस गईं, परन्तु अधिक हानि नहीं हुई। इसके पीछे एक अद्भुत घटना हुई। एक महीने के भीतर अधजली डालियों में फिर से ऐसे फूल निकले जिस तरह हर साल मई में फूल निकलते थे। इसी तरह उस साल सितम्बर-अक्टूबर मे दोवारा फूल निकले। एक जगह कुछ फूल के पौधों के पास तक आग आ गई थी और वह कुछ झुलस गये थे। वह भी उस साल दोवारा फूले।

उसी साल फ्रान्स के दक्षिण मे एक और ऐसी ही घटना हुई। एपर्ट (Apert) साहव ने वयालाजिकल सोसाइटी को लिखा कि जुलाई और अगस्त में टिड्डियों ने कुछ पेड़ों की बड़ी

हानि की। वह अक्टूबर में बहुत फूले। जिस पेड़ की जितनी ही हानि हुई थी वह उतना ही अधिक फूला।

यही हाल नीची श्रेणी के जानवरों का है। छिपकली की दुम कट जाने पर फिर से निकल आती है। मकड़े की टाँग टूटकर गिरने पर फिर पैदा हो जाती है। केंचुवा दो टुकड़ों में कट जाने से नहीं मरता, पीछे के हिस्से में सिर निकल आता है और अगले हिस्से में पीछे का हिस्सा बन जाता है—इस तरह से दो केंचवे हो जाते हैं। ऐसे ही और जानवरों में भी बहुत से अङ्ग कटने पर फिर से निकल आते हैं। जो अङ्ग जिस जानवर के लिए जितना ही अधिक उपयोगी होता है वह उतना ही जल्दी निकलता है। कीड़ों में सिर पहिले निकलता है और दुम पीछे। मछलियों में अधिक उपयोगी पंख, कम काम आनेवाले पंखों से पहले निकलते हैं। यदि बहुत से पंख कट जायँ तो दुम के पंख सबसे पहिले निकलते हैं फिर बग़ल के, फिर नीचे के और पीछे के पंख सबके पीछे निकलते हैं।

जानवरों के कुछ अङ्ग ऐसे होते हैं जिनके कटने और गिरने का डर बहुत होता है। मकड़े की टाँगें, झींगे की टाँगें, गिरगिट और छिपकली की दुम बहुत गिरा करती हैं परन्तु इससे उनको कोई विशेष हानि नहीं होती। यह अङ्ग थोड़े ही समय में दुबारा निकल आते हैं।

यह शक्ति ऊँची श्रेणी के जानवरों में कम हो जाती है।

जिस जानवर का बल और ज्ञान जितना ही अधिक होता है और वह अपनी रक्षा कर सकता है उतना ही उसकी यह शक्ति घटती जाती है। ऊँची श्रेणी के जानवरों मे यह अङ्ग फिर से नहीं निकलते; केवल छोटे-मोटे घाव भर जाते हैं। यह सब होते हुए भी ऊँची श्रेणी के जानवरों मे सदा शरीर की "मरम्मत" हुआ करती है। शरीर काम करने से जीर्ण होता रहता है। बहुत सी सेलें (Cell) मर जाती हैं इसलिए नई सेलें पैदा होना परमावश्यक है।

हमारे शत्रु केवल बाहरी ही नहीं हैं प्रत्युत हमारे बहुत से छिपे शत्रु भी हैं जिनके साथ हमारा सदा युद्ध हुआ करता है। शरीर के अन्दर युद्ध करने के लिए रुधिर मे फ़ैगोसाइट्स (Phagocytes) होते हैं। यह हमारे शरीर के अन्दर हमारी अनजान में हमारे शत्रुओं से लड़ा करते हैं। जो सेल बेकाम हो जाती हैं उनका यह नाश कर देते हैं, घाव के पास आकर जमा हो जाते हैं और बाहर से बीमारी के कीटाणुओं को नहीं आने देते। इस तरह घाव जल्दी भर जाता है। जब शरीर के किसी अंश में बाहर से कीटाणु आ जाते हैं तब रुधिर मे विकार उत्पन्न होते ही इनको सूचना मिल जाती है और बहुत से फ़ैगोसाइट्स उस स्थान पर पहुँचकर शरीर की रक्षा करने लगते हैं, और यदि आदमी पहले से बीमार नहीं है (क्योंकि ऐसी दशा मे वह थके रहते हैं) तो युद्ध करके शत्रुओं को मार कर खा जाते हैं। इसके अतिरिक्त विकार दूर करने के लिए एक

दूसरी वस्तु एण्टीटक्सीन (Antitoxin) बना देते हैं जिससे कि विष का नाश हो जाता और उसका असर कम होता है। इस तरह का युद्ध सदा हुआ करता है। परन्तु हमको इसका समाचार सदा नही मिलता क्योंकि यह फ़ैगोसाइट्स हमारे मस्तिष्क तक समाचार नहीं भेजते। वह बिना पूछे ही सारे शरीर की रक्षा किया करते हैं।

यह सब क्यों होता है? इसी लिए कि प्रत्येक जीवधारी अपने प्राणों की रक्षा करना चाहता है। प्रकृति जिसको जीव-दान देती है उसको प्राणों की रक्षा का उपाय भी बता देती है। अपने प्राणों की रक्षा करना प्रत्येक प्राणी का धर्म है।

शत्रुओं के अतिरिक्त और भी बहुत सी दशाओं मे हमारे प्राण जा सकते हैं। स्थिति मे परिवर्तन होने पर भी प्राण-रक्षा करने का उपाय प्रकृति ने कर दिया है।

हम इसका एक उदाहरण मरु-भूमि के पौधों से देते हैं।

हम सब जानते हैं कि जीवन के लिए पानी परमावश्यक है; क्योंकि प्राणियों और वनस्पतियों मे कुछ न कुछ पानी न रहने से जीवन की कल नहीं चल सकती। सब के लिए कम से कम एक नियत परिमाण से पानी की आवश्य-कता है। इसी से सिद्ध है कि नष्ट होने से बचने के लिए मरु-भूमि के पेड़-पौधे, अपने को एकान्त अनावृष्टि के देश में पनपने के योग्य बनाने के लिए, अपना स्वभाव बदलने को बाध्य

हुए हैं। समस्या कठिन थी; परन्तु पौधों ने उपाय निकाल ही लिया। उन्होंने बहुत से यत्न किये जिनमे से इतने मुख्य हैं:—

१—पौधे पत्तियों के द्वारा साँस लेते हैं और साँस के साथ जल भी निकल जाता है। इसलिए पत्तियाँ बहुत छोटी और थोड़ी होती हैं। किसी-किसी पौधे मे तो पत्तियाँ होती ही नहीं, डण्ठल ही से साँस लेने का काम लिया जाता है। बरसात बहुत छोटी होती है इसी से पौधे अपना काम निकाल लेते हैं; इसी मे बढ़ते, फूलते और अपने बीज पकाते हैं जो दूसरी बरसात की राह देखा करते हैं।

२—इनकी जड़ें दूर तक फैलती हैं। कभी पृथिवीतल के समानान्तर १५ या २० गज़ तक जाती हैं और पानी को सूखने से पहले ही खींच लेती हैं; कभी बहुत दूर तक नीचे चली जाती और जल खींच लाती हैं। जड़ें ऊपर के पेड़ से बीसगुनी लंबी होती हैं।

३—पौधे अपने तनों मे ऐसी गिलटियाँ सी बना लेते हैं जिन से खार निकालकर पानी सोख लेते हैं।

४—बरसात का पानी—जितना हो सकता है—जड़ों में, तनों में, और पत्तियों मे रख लेते हैं और सारी सूखी ऋतु भर अपना काम चलाने के लिए पानी को भाप बनकर उड़ने से न देने के अनेक उपाय करते हैं।

५—धरती को अपनी पत्तियों और डण्ठलों की मोटी तह से ढाँककर सूर्य की तपन से तरी को सूखने नहीं देते।

इस स्थिति के अनुकूल बनने की शक्ति देखने के लिए हमको मरु-भूमि जाने की आवश्यकता नहीं। इँगलिस्तान में मई से सितम्बर तक घास के "लान" (lawn) अठवारे में एक बार कतरे जाते हैं। इसमें देखो कि बीच-बीच में अनेक फूल निकलते हैं। इन फूलों के पैाधे कहीं-कहीं कट जाते हैं परन्तु इनके डँठुयं छोटे रहने से ये कतरनेवाली छुरी से अपने को बचा लेते हैं।

पैाधों को छोड़कर कीड़ों या अँधेरी खोहों के रहनेवाले क्रस्टेशिया (Crustacea) को देखो, तो परिवर्तन मे इससे भी बढ़कर चतुराई झलकती है। इनको न तो काटनेवाली मशीन से बचना है न पानी बचाने का काम है। इनको प्रकाश-हीन स्थान में रहना है। इन जीवों ने देखने और सुनने की इन्द्रियों को दबा लिया है, क्योंकि खोहों मे न तो प्रकाश है कि देखें, और न शब्द है कि सुनने का काम हो; हाँ अपने अन्य अंङ्गों की लम्बाई अवश्य बढ़ा ली है। इनके पंजे, सिरों पर के स्पर्श-ज्ञान के सींग और इनकी दुम कभी-कभी इनके शरीर की तिगुनी चौगुनी होती है। इनकी सहायता से इन्हे झट-पट इनकी राह मे रोक-टोक का, और सबसे बड़ा उपयोगी काम शिकार का, ज्ञान हो जाता है। प्रकृति चाहती है कि जीवन सर्वत्र रहे, प्रकाश और शब्द हों या न हों। गुफा के जीवों ने अपने को अपने निवास-स्थान के अनुकूल बना लिया है; क्योंकि प्रकृति की इच्छा है कि यहीं रहें।

गुफाओं में जाने और "लान" देखने का भी काम नहीं।

इस विचित्र अनुशीलन को देखने के लिए हम लोग अपना ही शरीर क्यों न देखें।

हम जानते हैं कि हमारे शरीर का तापक्रम (Temperature) सदा एक रहता है। पाँच-छः डिग्री के बढ़ने-घटने से ही मृत्यु हो जाती है। किन्तु हवा का तापक्रम बहुत बदलता रहता है। हमारे शरीर के तापक्रम और उसके तापक्रम में बड़ा अन्तर है। परन्तु हमारे शरीर मे गरमी और ठण्ढ से बचने का उपाय है। तुम जानते हो कि प्रकृति ने क्या उपाय निकाला है? उसने हमारी त्वचा मे पसीने की गिलटियाँ बना दी हैं, जिनसे जितनी हीं गरमी अधिक होती है उतना ही अधिक पसीना निकल जाता है। उसके भाप बनकर उठने से शरीर में तरावट और ठण्ढक आती है। सरदी में त्वचा के रुधिर की नलियाँ सिकुड़ जाती हैं जिससे ठण्ढक अन्दर घुसने नहीं पाती और उसी के साथ भीतर गरमी पैदा होने लगती है।

अब हमको मालूम हो गया कि प्रकृति जीवन बचाने के लिए तीन उपाय करती है; (१) जिन जीवों के शत्रु बहुत होते हैं उनके बहुतायत से बच्चे होते हैं। (२) जिन जीवों को लड़ाइयाँ बहुत लड़नी पड़ती हैं या जीवन के निर्वाह में और बहुत से कष्ट उठाने पड़ते हैं और जिनमें अपने बचाने के लिए बुद्धि और बल नहीं होता उनके घाव बड़ी सुगमता से भरते हैं। उनके अङ्ग कट जाने से फिर निकल आते हैं। जिनके पास बचाव के अधिक साधन होते हैं उनके घाव भी

कठिनता से भरते और बच्चे भी कम होते हैं। (३) जीव अपने को अपने निवास-स्थान के अनुकूल बनाता है।

प्रकृति ने जीवन बचाने के लिए बहुत से उपाय किये हैं, जो नीचे दिये जाते हैं,—

पौधों की स्वाभाविक चेतना-शक्ति।

जाति के बचाने के लिए बहुत से अण्डों-बच्चों का पैदा होना।

माता का अपने बच्चों से प्रेम और उनके लिए स्वार्थ-त्याग।

अपने को बचाने की स्वाभाविक उत्तेजना।

कष्ट से बचने के लिए प्राकृतिक उपाय।

शरीर की बनावट, रुधिर का चलना, भोजन का पचना इत्यादि।

घाव भरने की शक्ति।

प्रत्येक जीव का जीवन से प्रेम।

मौत का डर।

जीवन बचाने के और बहुत से उपाय।

अब हम बिना संकोच कह सकते हैं कि प्रकृति का उद्देश जीवन के विनाश करने का नहीं है, उसका उद्देश तो जीव उत्पन्न करने का है।

हम यह पूछ सकते हैं कि प्रकृति जीवन ही, चाहे वह कैसा ही क्यों न हो—उत्पन्न करके सन्तुष्ट हो जाती है—या इससे बढ़कर उसका कुछ अभिप्राय है? जो कुछ हो चुका है,

उसको देखने ही से हम लोग समझ सकते हैं कि प्रकृति किस राह चलती है। वस्तुओं और प्राणियों की उन्नति, आदि से लेकर मनुष्य-जाति के प्रकट होने तक, उन्नीस क्रमों मे बँट सकती है और यह क्रम आपस में बराबर नहीं हैं।

(१) प्रारम्भ मे हमारा संसार (विश्व) केवल द्रव्य का एक बड़ा समुदाय था। यह द्रव्य गैस के रूप मे था जिसे अँगरेज़ी में नेबुला (Nebula) कहते हैं। इसका व्यासार्द्ध इतना बड़ा था कि जिसके आगे सूर्य्य से नेपच्यून (Neptune) की दूरी कुछ भी नहीं है।

(२) इसके परमाणुओं को आकर्षण-शक्ति ने एक दूसरे के पास खींचा, इससे सारा समुदाय चक्कर लगाने लगा।

(३) इसका परिणाम यह हुआ कि द्रव्य के छोटे-बड़े टुकड़े उस गोले से अलग होकर ग्रह बन गये। ग्रह पहले गैस के रूप मे प्रकट हुए; फिर द्रव रूप में आये; फिर कुछ घन और कुछ द्रव रह गये। इस रीति से हमारी पृथ्वी बनी। हमारा तर्क बल-हीन न होगा, जो हम इस कल्पना के बदले टूटते तारों की कल्पना मान लें जैसा प्रोफ़ेसर ज़ीन का सिद्धान्त है; "(Nebula) नेबुला पहले गोले के आकार का था; पीछे ठण्ढा होकर नाशपाती के आकार का हो गया और इस नाशपाती का पतला किनारा पहले अलग होकर सबसे दूर का ग्रह बन गया। यही क्रिया बार-बार होती रही और इसी रीति से और-और ग्रह बने।"

(४) महासागर का तापक्रम (Temperature) बहुत बढ़ा था। क्रम से घटा, जिससे जीवन प्रकट हो सके और प्रकट हो गया। सबसे पहले जीव बहुत ही सादी बनावट के पौधे थे। पौधे एक सेल (Cell) के थे। यही एक सेल जीवन का सारा काम करती थी।

(५) इसके पीछे प्राणियों के छोटे से छोटे रूप निकले और प्रोटोज़ुआ (Protozoa) बने जो वनस्पतियें और जीवों के बीच मे होते हैं। यह बिना स्नायु के लसदार पदार्थ हैं; उद्भिजों से मिलते-जुलते तो हैं पर पूरे प्राणी नहीं हैं।

(६) उन्नति बराबर होती रही और समुद्र में ऐसा जीव उत्पन्न हुआ जिसे वैज्ञानिक (Cœlenterata) सीलेंट्रेटा (पेट वाले जीव) कहते हैं :—

पीछे क्रम से

(७) Echinodermata. पपड़ीदार खालवाले

(८) Annelids. केंचुये

(९)M ollusces. घोंघे

(१०) Arthropoda. कीड़े-मकोड़े जैसे मकड़ियाँ

(११) Ganoid fish. एक प्रकार की मछली

(१२) Batrachia. मेढक आदि

(१३) Reptiles. रेंगनेवाले जीव

(१४) Dinosaurs. सूँड़वाले

(१५) Marsupials. पेट के ऊपर थैली वाले जैसे कंगारू

(१६) Birds. पक्षी

(१७) Teleostean fish. पूरी ठठरी वाली मछलियाँ

(१८) Placentals. बच्चेदानी वाले जीव

(१९) Man. मनुष्य ।

हमारे जिन पाठकों ने यह शास्त्र पढ़ा है उनके लिए इन क्रमों की बनावट और इनके स्वभाव का विचार करना यहाँ व्यर्थ होगा। क्योंकि वे बिना कुछ कहे हुए समझ जायँगे कि अगले क्रम के जीवों में पिछले क्रम के जीवों की अपेक्षा शारीरिक और मानसिक उन्नति कितनी हुई; और इस विषय मे जिनका ज्ञान कम है वे इस श्रेणी के सबसे पहले और पिछले जीवों का मिलान कर सकते और जान सकते हैं कि प्रोटोज़ुआ (Protozoa) से मनुष्य बनने में उन्नति किस प्रकार से हुई है और दोनों का इतना बड़ा अन्तर कैसा क्रम-बद्ध है । प्रोटोज़ुआ और हममें एक बड़ा गहरा अन्तर देख पड़ता है, परन्तु अब विचार से देखने पर दोनों ऐसे मिले हुए हैं मानो उन पर पुल बँध गया है । मनुष्य का शरीर भिन्न-भिन्न भागों का बना हुआ है और हर एक भाग का ऐसा भिन्न काम नियत है जो उस भाग को पूरा करना चाहिए ।

मनुष्य के मस्तिष्क ने विज्ञान और गणित के नियम निकाले और उनकी सन्धि सी बना डाली । पृथ्वी की और ग्रहों की

और तारों तक से दूरी नाप ली। ग्रहों का भार और तारों का तत्त्व भी जान लिया। अपनी सारी जाति के लिए नित्य नये-नये आविष्कार किये, मनुष्य अपने स्वजातियों की सहायता करता, अपनी सहानुभूति से ढाढ़स बँधाता और उनकी रोगीचर्य्या करता है; आदर्श के लिए प्राण देता, प्रकृति में सौन्दर्य्य देखकर विचलित होता है और अपनी कलाओं से उसे प्रतिपादन करने का उद्योग करता है। मीठे स्वरों से चित्त के कोमल भाव प्रकट करता, अपनी भाषा से औरों को अपना भाव जनाता और विद्युत्-शक्ति से उनको पृथिवीमण्डल के कोने-कोने तक पहुँचा सकता है।

मनुष्य-जाति मे कितने प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध, कितने धार्मिक पुरुष हुए जिनमे से बहुतेरों को कोई जानता भी नहीं। परन्तु यह बढ़ती अकस्मात् नहीं हुई है। हमको यह भी न सोचना चाहिए कि एक दिन वह प्रोटो.जुआ थे और दूसरे दिन वह सुन्दर और महा बुद्धिमान् मनुष्य हो गये। अदल-बदल बहुत धीरे-धीरे हुआ है। मनुष्य के उत्पन्न होने से पहले जो जीव क्रम से पहले प्रकट हुए उनकी संख्या बहुत थी और अगला जीव पिछले जीव से बहुत थोड़ा ही बढ़ा हुआ था। उन्नति क्रम से हुई और जीवन को क्रम से प्राणि-शासन के अधिकार प्राप्त करने मे सैकड़ों सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ी हैं। मनुष्य-जाति मे भी उन्नति होती रही। जो मनुष्य पहले हुए उनमे और आजकल के मनुष्यों मे बड़ा

भेद है। डार्विन (Darwin) ने लिखा है कि जब हमने फ़िजी-निवासियों को पहले पहल देखा तब हमको इस बात का ज्ञान हुआ कि हमारे पितामह भी असभ्यता की दशा मे ऐसे ही रहे होंगे। फ़िजी-निवासी निपट नङ्गे थे और शरीर मे रङ्ग पोते रहते थे। उनके केश लम्बे और उलझे हुए रहते थे। परदेशियों को देखकर ऐसा घबराते थे कि उनके मुँह से झाग निकल उठती थी। उनके कुरूप मुखों से आश्चर्य, भय और क्रोध प्रकट होता था। उनमे कोई शासन की रीति न थी। वन मे जन्तुओं की भाँति रहते और जो मनुष्य उनके कुल का न था उसको वेदर्दी से मार डालते थे। जब डार्विन ने देखा था, फ़िजीवालों की यही दशा थी और हज़ारों वर्ष पहले हमारे पूर्व-पुरुषों की भी यही दशा रही होगी। तब से मनुष्य ने बड़ी उन्नति की है, इसको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। इस प्रोटो ज़ुआ से मनुष्य-जाति तक की जो निरन्तर उन्नति हो रही है उसे कोई रोक नहीं सका। लोगों की इच्छा की परवा छोड़कर उन्नति अवश्य हुई, जिसमे उनकी इच्छा-शक्ति का कुछ वस नहीं चला और जो नैतिक-परिणति के रूप मे अभी तक हो रही है। इससे हम क्या अनुमान कर सकते हैं? हम देखते हैं कि श्रेणी मे जो जीव ऊँचा चढ़ा है उसकी क्रिया-शक्ति भी बढ़ जाती है और प्रत्येक क्रम के प्राणियों में अपने से पहले क्रम की अपेक्षा बढ़ी हुई क्रिया-शक्ति रहती है। जब हमारी पृथ्वी नेबुला (Nebula) के आकार में थी

तब से आज तक जितनी घटनाएँ हुई हैं उनसे सिद्ध होता है कि प्रकृति सबसे अधिक जीवन उत्पन्न करना चाहती है पर उसकी यह भी प्रवृत्ति है कि सबसे बढ़ा हुआ चेतना-संयुक्त जीवन उत्पन्न करे।

इतना ही नहीं, जीव हो, पौधा हो, पशु हो या मनुष्य हो—सब को कुछ न कुछ नीति माननी और बरतनी पड़ती है। इसका अभिप्राय यह है कि उसे आचरण के कुछ न कुछ नियम पालने पड़ते हैं, न पालने से उसका नाश हो जाता है। व्यक्तिमात्र होकर बचे तो जातिमात्र से अवश्य नष्ट हो जाता है। प्रारम्भिक धर्म्मनीति बहुत पुरानी है और बुद्धि की भाँति सदा उन्नति करती रही है।

हम लोग पौधे की धर्मनीति का संक्षेप से विचार करते हैं। बली सन्तान होने के लिए अर्थात् अपने वंश को उचित जीवन देने की शक्ति के लिए फूल केवल परहित के विचार से गर्भ धारण करना नहीं चाहता, और फूलों में पराग पहुँचाने के साधन बहुधा बहुत महँगे पड़ते हैं; जैसे सुगन्ध, रङ्ग, मकरन्द इत्यादि उपजाना जिससे कीड़े-पतिंगे उसके पास पहुँचे। इसके पीछे पौधों को अपने बच्चों के बढ़ाने का उपाय करना पड़ता है। वह यह है कि अँकुए के पास उसके भोजन का ऐसा प्रबन्ध करता है जिसको खाकर पौधा बढ़े, जब तक कि उसमें आप से आप भोजन कमाने की शक्ति न आ जाय। अन्त में माता बीजों को फैलने की शक्ति देती है जिससे वह

उपजाऊ धरती पर पड़ें। प्रकृति की प्रेरणा से पौधा एक समझदार और प्रेम-करनेवाली माता का काम करता है और अपनी शक्ति भर अपने प्राण तक देकर अपने बच्चों के जिलाने का उपाय करता है। इससे सिद्ध हुआ कि पौधा भी एक नीतिज्ञ जीव है। यह मातृधर्म का पहला अध्याय है जो प्रकृति हमारे सामने रखती है।

अब पशु-पक्षियों का विचार करना चाहिए। पशु भी अपने बच्चे के जीवन का ध्यान रखते हैं। बच्चे के पैदा होते ही माता-पिता को उसके कुशल की चिन्ता होती है। शेर और चीते की मादा अपने बच्चों की देख-भाल करने के लिए घर पर रह जाती हैं; पिता शिकार करने जाता है और शिकार मारकर माँ और बच्चों को खिलाकर आप खाता है। परन्तु माता-पिता की देख-भाल इतनी ही नहीं है, वे बच्चों को शिकार करना भी सिखाते हैं। यह शिक्षा, यह देख-भाल और यह रक्षा, तभी बन्द होती है जब बच्चे अपनी देख-भाल आप करने लग जाते हैं।

चिड़ियाँ इतना ही नहीं, बरन इससे भी बढ़कर करती हैं; क्योंकि माता-पिता पहले मिलकर घोंसला बनाते हैं। माँ अपनी स्वतन्त्रता और चलने-फिरने की चाह को खोकर, पर फैलाये, घोंसले में कई दिन तक बराबर पड़ी रहती है। यह बहुत ही थकानेवाला आसन है। इसमे उसको एक यही आनन्द मिलता है कि कभी-कभी अपने कान्त और मन दोनों

से अपने पति का गाना सुनती है पर अण्डे फूटते ही, ज्योंही बच्चे निकल आये, गाना बन्द हो जाता है। इधर-उधर बहुत उड़ने का काम हो जाता है क्योंकि बच्चे भूख के मारे मुँह बाये रहते हैं और बाप बड़े परिश्रम से कीड़े पकड़-पकड़कर अपनी स्त्री और बच्चों के लिए लाता है और अपना विचार तभी करता है जब उसके परिवार का पेट भर जाता है। उसके पीछे माता-पिता अपने बच्चों को उड़ना सिखाते हैं। इसमे कई दिन लगते हैं और जैसी सारी शिक्षा की रीति है, बड़े धैर्य का काम है। जोड़े के साथ रहनेवाले पशुओं से हमको परिवार-रीति का पहला उदाहरण मिलता है। यह पौधों की रीति से बढ़कर है। पौधों मे माँ अकेली बच्चों की सेवा करती है पर मांसाहारी पशुओं और पक्षियों में पिता भी अपना धर्म समझता है। जो पशु झुण्ड के झुण्ड एक साथ रहते हैं और जिनको मनुष्य ने पालतू नहीं बनाया है उनमे एक नया बन्धन, नये नियमों के साथ, देख पड़ता है। मांसभक्षियों मे प्रीति तभी तक रहती है जब तक बच्चे माता-पिता के साथ रहते हैं। बच्चों के सयाने होने पर कुल तितर-बितर हो जाता है और जब तक फिर बच्चे होने का समय नहीं आता, धर्म्मनीति नष्ट रहती है। झुण्ड वाले पशुओं मे कुल के बन्धन जाति-बन्धन नहीं हैं। झुण्ड के एक-एक पशु को और पशुओं के साथ कुछ धर्म निवाहना नहीं है। उचित न्याययुक्त व्यवहार, (जैसे घास के एक

कौर को, जिसे एक पशु ने अपने दाँतों से काटा है, खाने में मीठा जानकर दूसरा नहीं छीनता) धैर्य, तितिक्षा ऐसे गुण उनमें होते हैं। आपस मे झगड़ा बहुत कम है पर सब से बढ़कर परस्पर सहानुभूति, सहायता, रक्षा और मेल, धर्म समझे जाते हैं।

उदाहरण के लिए देखो बन्दर एक दूसरे के जूँ मारा करते हैं और जब कटीली झाड़ियों में होकर उनको जाना पड़ता है तब एक बन्दर दूसरे के काँटे उन अङ्गों से निकालता है जहाँ उसके हाथ नहीं पहुँचते। यह भी देखा गया है कि वह अन्धों को चारा खिलाते हैं। डार्विन (Darwin) ने कुछ कौवों का दृष्टान्त लिखा है जो अपने दो-तीन अन्धे साथियों को खाना खिलाया करते थे। एक बुड्ढी चील का भी हाल लिखा है जो निपट अन्धी थी पर अपने साथियों के अनुग्रह से मोटी हो रही थी।

झुण्ड के रहनेवाले पशु अपने झुण्डवालों की एक साधारण सेवा यह करते हैं कि उन्हे भय का कारण बता देते हैं। खरहे, अपनी पिछली टाँगें धरती पर पटकते हैं, साबर भी यही काम अपनी अगली टाँगों से करता है। बहुत से पक्षी और दूध पिलाने-वाले पशु चौकीदार खड़ा कर देते हैं। बन्दरों मे चौकसी का यह काम झुण्ड का अगुआ करता है और अपने कुल को सावधान करने के लिए चिल्लाता है। अरनों का झुण्ड जब सङ्कट में पड़ता है तब मादा और बच्चे बीच में कर लिये जाते हैं और

नर उनको घेरकर वैरी से लड़ने के लिए खड़े हो जाते हैं। यहाँ हम यह भी कहना चाहते हैं कि झुण्ड के पशु, जो एक दूसरे से परिचित हैं, सङ्कट में पड़ जाते हैं तो सयाने नर बचाने के मुख्य काम करते हैं। बलवान् ही कुछ सयाना नहीं है; प्रत्युत् बड़े चतुर और समझदार भी सयाने हैं। इस विषय का हम एक उदाहरण लिखते हैं जिसे ब्रेम (Brehm) ने देखा था। इस पक्षी-वैज्ञानिक को ऐबीसीनिया (Abbysinia) में बन्दरों का एक झुण्ड मिला जो एक घाटी पार कर चुका था। इनमें से कुछ सामने की पहाड़ी पर चढ़ चुके थे और कुछ मैदान में थे। पर ज्योंही नर बन्दरों ने देखा कि पीछे पड़े हुओं पर शिकारी कुत्ते झपटे, वे तुरन्त उतर आये और ऐसा धमकाने का भाव बताया और इतना चिल्लाये कि वैरी हट गये। पर कुत्ते फिर लुकारे गये। बन्दर सब पहाड़ पर पहुँच गये। एक बच्चा पीछे बैठा था। उसे कुत्तों ने घेर लिया। इस बच्चे का सङ्कट देखकर एक बड़ा बली बन्दर अकेला पहाड़ पर से उतर आया। धीरे-धीरे बच्चे के पास पहुँचा और उसे छाती से लगा लिया और अकड़ता हुआ भाग गया। कुत्ते सब ताकते ही रह गये। उन्होंने उस वीर और उसके अमूल्य भार को चुपचाप निकल जाने दिया।

झुण्ड में रहनेवाले पशुओं में एकता और सहायता की आवश्यकता रहने से नीति का भाव सदा बना रहता है।

यहाँ नीति ने बड़ी उन्नति की है। यह जाति-सम्बन्धी नीति का पहला उदाहरण है। बहुतेरे कीड़े, चींटियाँ, मधुमक्खियाँ बने हुए घरों में रहती हैं जो क्रम से आगे-पीछे रहते हैं जिनमें सब सुख और काम करने के सुभीते हैं। इन समाजों के जीव एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं बसते। इसलिए इनका काम बहुत बढ़ा रहता है और काम की ओर विशेष ध्यान देते हैं। यह नियम यहाँ तक पाला जाता है कि जैसे मधुमक्खियों में जब उनको कोई विशेष काम करना रहता है तब दूसरा काम, कैसा ही लुभावना क्यों न हो, नहीं देखतीं। जी-बोनियें (G.Bonnier) ने देखा था कि जिन मक्खियों का काम पानी लाना होता है वह कभी लोभ में पड़कर मीठे रस के पास नहीं जातीं। ऐसे ही जिनका काम फूलों का रस लाना है वे आगे पड़ा पानी सूखे में भी न छुयेंगी; और उस समय भी, जब बच्चों के पालने के लिए छत्ते में पानी की बड़ी आवश्यकता होती है, न छुयेंगी। मक्खियाँ समझती हैं कि छत्ते का काम जल्दी और अच्छी तरह करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक मक्खी जी लगाकर वही विशेष काम करे जिसकी उसे आज्ञा मिली है, और समय की तरङ्ग तथा कोई वस्तु अकस्मात् सामने पड़ जाने से भटक न जाये। प्रत्येक मक्खी का कार्य्य-क्रम है, वह न और काम में पड़ना चाहती, न उसमें घट-बढ़ करती है। एक-एक मक्खी को सबकी भलाई की ही चिन्ता है। चाहे

जितना दुख उठाना हो, बिना कुछ कहे-सुने, जो काम उसको सौंपा गया है उसे स्वीकार करती है। जैसे गर्मी में जब पूरा काम करना पड़ता है, काम करनेवाली मक्खियाँ बड़े परिश्रम से थककर छः ही सप्ताह में मर जाती हैं। यहाँ हम लोग धर्मनीति को भी उस परम उन्नति पर देख रहे हैं जो जीवों को प्राप्त हो सकती है।

यही नीति मनुष्य की है। मनुष्य की राजनीति भी क्रम से ऐसी ही दशा में होती हुई परिपक्व हुई है। सबसे पहले का मनुष्य कुछ-कुछ ऐसा ही रहा होगा जैसे चीते, भेड़िये रहते हैं और उसकी नीति भी इसी प्रकार की रही होगी। इसके पीछे बनजारों की भाँति एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर रहने-वाले बने। सबके पीछे मनुष्य एक स्थान पर बस गये और तभी नागरिक-प्रथा का जन्म हुआ। बहुत दिनों तक कुछ उन्नति न हुई, क्योंकि सब लोग, जो एक ही नगर या जत्थे के न थे, शत्रु समझे जाते थे और—जब कभी हो सकता था—निर्दयता से मार डाले जाते थे। जीवन की दशा ठीक उसी प्रकार की थी जैसी कि फ़िजीवालों की १८०३ में दृष्टिगोचर हुई थी।

अन्त में बहुत से नगर मिल गये और एक जाति बन गई और धर्म इतना बढ़ा दिया गया कि उसे केवल अपने ही परि-वार के साथ नहीं निवाहना पड़ा परन्तु अन्य नगरों के साथ भी। सच तो यह है कि मनुष्य जानवरों से श्रेष्ठ बन गये, उनमे

जातीय-जीवन का सञ्चार होने लगा। जातीय जीवन सैकड़ों वर्ष तक बना रहा। यह लोगों को सिखाता था कि अपनी जाति की सहायता करो परन्तु अन्य जातियों को सदा शत्रु समझो और हो सके तो उन्हें नष्ट कर दो। वालटेर (Voltaire) ने ठीक कहा था कि अपने देश की उन्नति करना अपने पड़ोसी देशों को हानि पहुँचाना है।

ऐसा जीवन अभी तक बहुत से लोगों का है परन्तु कुछ लोगों ने और भी उन्नति की है। उन्होंने जातीय जीवन को सांसारिक बनाने का उद्योग किया है। उन्होंने यह समझ लिया है कि मनुष्य को अपने परिवार, शहर, जाति, और समस्त संसार से, जाति या जत्थे का विचार छोड़कर, व्यवहार करना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि जीवन में अभी तक उन्नति होती जा रही है। एक मनुष्य अपने से बढ़कर दूसरे के गुणों का आदर करता है। हम दिन पर दिन दयाशील होते जाते हैं और लोगों को कम दुख देते हैं। कृतघ्नता से मारना या ग़ुलाम बनाना अनुचित समझा जाता है। अपराधी ऐसे भयानक जीव नहीं समझे जाते जिनसे हमें अपने को बचाना चाहिए, वह तो एक प्रकार के रोगी हैं जिनकी चिकित्सा करना हमारा धर्म है। कङ्गाल और रोगियों की दवा अब उचित रीति से की जाती है। वायु, प्रकाश, उद्यम, पढ़ना-लिखना और कुछ-कुछ सुख से रहने के लिए सबका अधिकार माना जाता है; सबको अपने भाव प्रकट करने की स्वतन्त्रता

है। लोग प्रतिनिधि चुनकर अपने क़ानून बनाते; क़ानून के न्याययुक्त व्यवहार से अपराधी—अपने धन और अधिकार की सहायता से—कम बचता है और कोमलचित्त या स्वार्थी राजा की सनक से किसी देश का भला-बुरा नहीं हो सकता। न्याय प्रकट होने लगा है। हम लोग अब उन्हीं से सहानुभूति नहीं करते जो हमारे चारों ओर हैं, जिनको हम अपनी आँखों से देखते हैं, जो हमारी जाति के हैं और हमारे गाँव में रहते हैं प्रत्युत अब तो हमको मनुष्यमात्र से सहानुभूति है, सबकी वास्तविक भलाई के लिए सब जातियों की एकता का सपना अब कुछ सच्चा होने लगा है। इसलिए अब हम पेओ (Payot) का कहना सच मानते हैं "जीवन सेलूरियन (Silurian) युग से है और प्रकृति के नियम इस समय भी वही हैं जो करोड़ों वर्ष पहले थे। इस बड़े परिवर्तन से, जो हज़ारों वर्ष से हो रहा है, सोचने-समझनेवाले जीव उत्पन्न हो गये हैं और उन समझनेवाले जीवों से धार्मिक जीव निकले हैं। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि संसार की उन्नति, ज्ञान और धर्म्म-नीति की ओर झुकती है?" रिचे (Rechet) का वचन है:—"मनुष्य का नैतिक ज्ञान उसके जीव-परिवर्तन की पराकाष्ठा है। करोड़ों वर्ष से जीव इसी को प्राप्त करने के लिए जी रहे हैं। इतना समय इसलिए आवश्यक है, कि प्रकृति के सब काम धीरे-धीरे होते हैं। कभी कार्य-क्रम टूट जाता है, ऊँचा-नीचा पड़ जाता है, रुकावट आ जाती है, पीछे हटना पड़ता है।

घटनाएँ बहुत कम सीधी राह चलती या निर्विघ्न उन्नति करती जाती हैं।"

हमने जो कुछ कहा उससे प्रकट है कि प्रकृति का अभिप्राय केवल जीवन ही की उत्पत्ति नहीं है वरन् ऐसे जीवन की उत्पत्ति है जो बहुत बली, चञ्चल, बुद्धिमान् और यथा-सम्भव नीतिज्ञ हो, तथा ऐसा भी हो जिसमे पूरी शक्ति और बल हो, परन्तु इसमे काल और दशाओं का विचार भी रहना चाहिए।

प्रत्येक जीती सेल (Cell), प्रत्येक पौधा, प्रत्येक जीव यह चाहता है कि हम पूर्ण रीति से जियें और हमारे सम्पूर्ण जीवन का प्रसार हो।

यही जीवमात्र की इच्छा है।*

जीने की इच्छा, पूर्ण रीति से जीने की इच्छा और फैलने की इच्छा सब जगह बराबर होती है। यह अँकुए के उगने में, पेड़ के रस के बढ़ने में और खिले हुए फूलों से लदे हुए पेड़ मे

---

*अपनी इच्छा से आत्मघात करना भी उस मनुष्य के पूर्ण जीवन की आकांक्षा का पक्का प्रमाण है। आत्मघात जब पागलपन से नहीं होता तब इसका कारण धार्मिक, मानसिक, या प्राकृतिक जीवन की अवनति है जो किसी विशेष हानि से हुई है जैसे किसी प्यारे की मृत्यु, मानहानि रख-रखाव में विघ्न, धन या स्वास्थ्य की हानि अथवा अपनी आशाओं के पूरी होने की असम्भावना से, पूर्ण रीति से जीने की निराशा है। आत्मघात-करनेवाला ऐसे जीने से मर जाना अच्छा समझता है।

देखी जाती है; यह उस अण्डे में,—जिसमें एक रस भरा है और जिसमें से एक पूरी चिड़िया निकलेगी, जिसके कि मस्तिष्क, आँखें, चोंच, जीभ, हड्डियाँ, पञ्जे, पंख, हृदय, फेफड़ा और रक्त आदि सब कुछ होगा,—देख पड़ेगी; यह बढ़ते बच्चे में, साँस लेनेवाले फेफड़ों में, शरीर मे दौड़नेवाले लोहू में, पाचन-शक्ति मे, पुरते घाव में, और रोग-कीटाणु से लड़नेवाले सारे शरीर में दर्शन देती है; यह, परिपक्क होती बुद्धि मे, ज्ञान की तृष्णा में, चलने-फिरने के आनन्द में, मित्रता में, हृदय भड़काने-वाले प्रेम में, सौन्दर्य में,—जिसमें आनन्द मिलता है, सूर्य में,—जो पृथ्वी पर अपना तेज डालता है,—हमारे गृह के बड़े जीवन में, और विश्व के जीवन में यही कामना प्रकट होती है।

मनुष्य भी इस विश्व का एक अंश है, समस्त पिण्ड का एक कण है। समष्टि की जो इच्छा होगी वही उसके भाग की भी होगी। समष्टि जहाँ जायगी वहीं उसका भाग भी जायगा। समष्टि की प्रवृत्ति भाग की प्रवृत्ति होगी। मनुष्य को चाहिए कि विश्व के साथ काम करे और अपनी प्रवृत्ति उसी ओर रक्खे जिधर विश्व की है। इसका अभिप्राय यह है कि उसको जीवन की आकांक्षा करनी चाहिए; प्राकृतिक जीवन की, चैतन्य जीवन की, धार्मिक जीवन की, सौन्दर्य्य-ज्ञान जीवन की आकांक्षा करनी चाहिए, जो सदा चाहा करे कि हम बड़े हों, बली हों, सुन्दर हों और हमारा मेल बढ़ता रहे। जीवन का पूर्ण-प्रसार, सबसे मेल के साथ

जीवन की परिणति और निरन्तर वृद्धि करना उसका उद्देश होना चाहिए।

जीवन की वृद्धि क्या है? अधिक काम करना, पहले से बढ़कर प्रेम करना और अधिक और बढ़कर फल प्राप्त करना, अधिक बढ़कर अनुभव करना, अधिक बढ़कर समझना, अधिक और बढ़कर अपने साथियों की सहायता करना—इन्हीं को जीवन का बढ़ाना कहते हैं।

अब हम इन प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं कि अच्छा क्या है और बुरा क्या है। अच्छा वह है जो हमारे जीवन की वृद्धि में सहायक हो; जो पूर्ण रीति से, प्राकृतिक, मानसिक, सौन्दर्य्य-युक्त और धार्म्मिक उन्नति में हमारी शक्तियों से काम लेने मे, प्राणिमात्र से मेल-जोल के साथ समृद्धि में हम लोगों की और दूसरों की उन्नति में सहायक हो। बुरा वह है जो जीवन को घटाता है और उसकी पूर्ण उन्नति और प्रसार को रोकता है।

इससे प्राकृतिक-नीति का यह लक्षण सिद्ध हुआ:—प्राकृतिक-नीति वह विज्ञान है जिसका अभिप्राय उन सारे साधनों का ज्ञान है जिनसे सारे रूपों में जीवन की रक्षा और वृद्धि हो सकती है। यह नीति प्राकृतिक, धार्मिक और सौन्दर्य्य-ज्ञान-युक्त है और इससे जीवनमात्र की सम्पूर्ण परिणति सिद्ध हो सकती है।

हम एक शङ्का सुनते हैं "यदि प्रकृति जीवन चाहती है

तो मौत क्यों होती है?" उत्तर—प्रकृति मौत इसी लिए चाहती है कि उसको अधिक जीवन की इच्छा है। शरीर-शक्ति दिन-दिन घटती है और इसका न घटना असम्भव है। शरीर के हिस्से घिस जाते हैं और न घिसना भी असम्भव है, और वह समय आ जाता है जब बुड्ढे समझते हैं कि हम अपना काम कर चुके; अब हमको विश्राम चाहिए। प्रकृति निष्क्रियता नहीं चाहती; वह अपने सारे रूपों में कर्म माँगती है। बुड्ढे और रोगी इसलिए मर जाते हैं कि उनकी क्रिया-शक्ति चुक गई। उनको हट जाना चाहिए और उनकी जगह जवान लोग आ जायँ और काम करें, जो कि अधिक बलवान्, शक्तियुक्त और काम करने के अधिक योग्य हैं तथा उत्साही हैं। जीवन तभी रह सकता है जब यह निरन्तर नया होता रहे। जीवन के रूप सब क्षणभंगुर होते हैं परन्तु प्रकृति का उद्योग निस्सन्देह जीवन है; क्योंकि वह चारों ओर जीवन फैला रही है। जीवन मौत ही से उत्पन्न होता है। मरनेवाले के लिए मौत दुखदाई नहीं होती। मौत उनके लिए निठुर है जो अपने प्यारों को मरते देखते हैं। मौत का पूरा वर्णन आगे लिखा जायगा।

दूसरी शङ्का यह है:—"यदि प्रकृति को जीवन अत्यन्त प्रिय है तो आँधी, तूफ़ान, भूडोल आदि क्यों आते हैं जिनसे उपद्रव, डर और मौत फैलती है?" इसका उत्तर लुई बोरडो (Louis Bourdeau) से सुनो। "सारे उपद्रवों में—आँधी,

ज्वालामुखी पहाड़ों के उद्गार और वायुमण्डल के उपद्रव, जिनके कारण हम दुखी होते हैं, सबमे संसार की साधारण क्रिया-शक्ति देखी जाती है जो अपना सांसारिक व्यवहार प्रकट करती है।" हम उनको उपद्रव भले ही कह लें परन्तु यह उपद्रव उसके साधारण कार्य्य-क्रम के अङ्ग हैं। इस कार्य्य-क्रम से हमको लाभ है और इससे जीवन के लाभकारी गुण निकलते हैं। इसलिए इसके किसी विशेष उद्योग से हमारी हानि हो तो हमें बुरा न मानना चाहिए। इसमें न कोई गड़बड़ है न कोई उपद्रव, और जो है भी तो वह बहुत छोटी-छोटी बातों में है। सारे विश्व मे एकता है, इसके जितने विकार हैं, सब क्रम से होते हैं और जो अनेक जीव इस एक के अङ्ग हैं उनके विकास के लिए सारी लाभकारी बातें इन्हीं से उत्पन्न होती हैं।

इन उपद्रवों के बिना इस पृथ्वी का यह बड़ा जीवन असम्भव था। अङ्गों की मृत्यु के बदले इस भूगोल पर सबकी मृत्यु हो जाती और कोई जीव-जन्तु न रहता। इससे भी सिद्ध हुआ कि पृथ्वी अधिक जीवन उत्पन्न करने के लिए थोड़े जीवन का नाश करती है।

एक और शङ्का यह है, और यह बहुत प्रबल प्रतीत होती है,—"यदि प्रकृति शरीर, बुद्धि, नैतिक ज्ञान और सौन्दर्य्य-विज्ञान इन चारों की सिद्धि चाहती है तो क्या कारण है कि इतने मनुष्य जो प्रकृति के अंश हैं—और जिन्हें उसकी राह पर चलना चाहिए—उसकी इच्छा के प्रतिकूल करते हैं और उसकी

आज्ञा के विरुद्ध करने मे अपना सुख ढूँढ़ते और अपना कर्तव्य मानते हैं तथा कहते हैं कि इसी से हमारा जन्म सफल होगा।"

इसका उत्तर कुछ लम्बा है। मनुष्य या पशु का जीवन उन छोटे-छोटे जीवनों का समुदाय है जो उसके शरीर के एक-एक जीव-अणु में हैं। पाल वर्ट (Paul Bert) कहता है कि शरीर का एक-एक भाग अपना-अपना जीवन निर्वाह करता है। प्रत्येक भाग से हमारा मतलब प्रत्येक इन्द्रिय या अङ्ग ही नहीं है किन्तु प्रत्येक उपाङ्ग (Anatomical elements) से भी है जो परस्पर मिलकर इन्द्रिय, अङ्ग, तथा समस्त शरीर को पूरा करते हैं। जी. ले बोन (G. Le Bon) कहता है कि "जीवित वस्तु सेलों के जीवन का समुदाय है।" एल. बोरडो (L. Bourdeau) का वचन है "कोई यह नहीं कह सकता कि सेल शरीर से भिन्न है। सच तो यह है कि शरीर एक प्रजा-तन्त्र राज्य है और इसमे अङ्गादि निवासी सेल हैं। केवल इतना ही नहीं कि सेलों की एक विशेष कल है और उसे भिन्न कार्य करना है परन्तु उसमे एक विशेषता यह है कि उसके अनुभव करने की रीति भी भिन्न है। उसमे स्मरण-शक्ति है क्योंकि यह पिछले संस्कारों के अङ्क स्थिर रखती और आवश्यकता पड़ने पर उन्हे प्रकट कर सकती है। उसके बुद्धि है, उसमे आकांक्षाएँ हैं, इच्छा-शक्ति है और मनुष्य इन्हीं बुद्धियों, आकांक्षाओं, और इच्छा-शक्तियों का समुदाय है।

जो शङ्का ऊपर लिखी है उसका उत्तर यह है कि प्रत्येक सेल

प्राणियों की भाँति प्रकृति के नियमों का पालन करना चाहती है और उसकी प्रेरणा पर चलने का उद्योग करती है। जिसका अभिप्राय यह है कि इसकी क्रिया-शक्ति की आकांक्षा को पूरा करना, पूर्ण रीति से जीना और पूर्ण सिद्धि प्राप्त करना चाहती है। परन्तु सेलों की शक्ति और उनका बल समान नहीं है; जैसे कि समाज में सब लोग स्वास्थ्य, बल, शक्ति और बुद्धि में समान नहीं होते। यह असमानता अनेक कारणों से होती है जैसे कुल-क्रम, बुरी शिक्षा जिससे सब सेलें पूर्ण रीति से परिणत नहीं हुईं, स्वास्थ्य की दशा और अनेक क्षयशील या स्थिर कारण। जो सेलें सबसे अधिक बली और पुष्ट हैं उनमें अपने पड़ोसियों की हानि करके उन्नति करने की प्रवृत्ति है। बलियों का बल बढ़ता जायगा और निर्बलों का घटता रहेगा। इस झगड़े का परिणाम यह होगा कि निर्बल भूखों मर जायँगे। इसका आवश्यक परिणाम यह है कि ऐसी शक्ति, आकांक्षा, गुण और अनुभव—जो पुष्ट और उन्नति-प्राप्त सेलों से उत्पन्न होते हैं—मस्तिष्क का स्वभाव बदल देंगे और उसी के अनुसार जीव उदार या कृपण, दीन या अहङ्कारी, धीर या हड़बड़िया, सांसारिक व्यवहार करनेवाला या भाव-पूर्ण, ईमानदार या बेई-मान, मुस्तैद या सुस्त होगा। एक विशेष सेल के प्रभाव से वह वैज्ञानिक, कवि, गवैया, चित्रकार, संगतराश, लेखक, गणितज्ञ, शिल्पी या आविष्कार-करनेवाला हो जायगा। एक बड़ा गणितज्ञ है। वह किसी भी दशा में रक्खा जाय, उसके

चारो ओर कैसी ही वस्तुएँ रहे, उसके भाव कैसे ही हों, बली से बली क्यों न हों, परन्तु वह अच्छा कवि न होगा। उसकी गणित की सेलें पुष्टता और बल से परिपूर्ण होकर अपनी प्रबलता से कविता की सेलों को दबा लेती हैं।

हमको चित्त पर यह सिद्धान्त अङ्कित कर लेना चाहिए कि प्रत्येक सेल अलग भरपूर उद्योग इसलिए करती है कि उसकी पूरी उन्नति हो जाय और वह प्रकृति की आकांचा पूरी करे। परन्तु जहाँ कहीं सेलों का समुदाय रहता है-(जैसे मस्तिष्क मे) वहाँ बली सेलों को और भी वली होने से और सारे समुदाय को चेष्टित करने से कोई रोक नही सकता। यह दशा उन देशों की हैं जिसमे प्रजा के प्रतिनिधि राज्य करते हैं। बड़े शक्तिमान्, बड़े आग्रही और बड़े चञ्चल लोग अपनी इच्छा-शक्ति का प्रभाव हज़ारों पर डालते हैं। उनका मत सबका मत कहलाता है। वे सबको अपनी राह पर ले चलते हैं। यह शरीर भी एक प्रजातन्त्र राज्य है। जैसे किसी देश की राजनीति स्थिर नही रहती; कभी एक समूह, कभी दूसरा समूह घटनाओं या दशाओ की सहायता से या अपने नायक की योग्यता से प्रबल हो जाता है वैसे ही मस्तिष्क भी विशेष गुण वदलता रहता है। जैसे यह देखा गया है कि बड़ा फक्कड़ मक्खीचूस हो जाता है, बड़ा विचार करनेवाला मिट्टी का धोंधा वन जाता है, जो ईश्वर के कामों मे सब भला ही भला देखता है उसे सब बुरा दीखने लगता है; जैसे मिलनसार सबको काट खाने

लगता है, उदास रहनेवाले हँसोड़ बन जाते, क्रोधी सरल बन जाते, तनिक से विरोध पर बिगड़नेवाले प्रतिवाद सहने लगते, और जड़ काम-काजी हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि समय से, आस-पास की वस्तुओं के प्रभाव से, स्वास्थ्य की भिन्न दशा से और हज़ारों अन्यान्य बातों से, जो सेल पहले बहुत बली थीं उनका बल या तो घट गया या—जैसा बहुत कम देखा गया है—निर्बल सेलों में बल आ गया। इसी से हम लोग कहते हैं कि केवल हमारी योग्यताएँ ही नहीं प्रत्युत हमारे भाव, हमारा स्वभाव, हमारा चाल-चलन बहुधा विशेष सेलों के बल और स्वस्थता के अधीन हैं, जैसे कि विशेष सेलों में विष पड़ जाने से मनुष्य पागल हो जाता है, थोड़ी सी मदिरा पीने से हमारे विचार और भाव सब बदल जाते हैं और सीधा और डरपोक आदमी निठुर और ख़ूनी हो जाता है।

प्रत्येक सेल के लिए जो कुछ होना सम्भव है वैसा होने का वह उद्योग करती है और अपनी पूर्ण उन्नति चाहती है, और जैसी प्रकृति की इच्छा है वैसा जीने का उद्योग करती है परन्तु इस जीवन के संग्राम मे कुछ सेल निर्बल हैं वह हार मान लेंगी और मनुष्य कभी-कभी वैसा न होगा जैसा प्रकृति चाहती है। प्रकृति की राह पर जब मनुष्य सदा नहीं चलता तब उसका प्रत्येक अंश प्रकृति के इच्छानुसार होने के लिए भरपूर उद्योग करता है। जो सबकी मिलकर उन्नति नहीं हो सकती तो उसका कारण यह है कि सेलों में भी जीवन-संग्राम

हो रहा है और समुदाय की इच्छा-शक्ति में इतना बल नहीं है कि अङ्गों की इच्छा-शक्ति को सँभाल दे जिससे निर्बल बली हो जायँ और बली निर्बलों को पीस न डालें।

अब हम लोग विचार करते-करते यहाँ तक पहुँचे कि हम कुछ ऐसे सेलों के दास हैं जो सबसे बली हैं। यह दास्य हमारा पूरा और एकान्त होता परन्तु इसको रोकनेवाली एक विचित्र शक्ति हममें है, जिसको हम इच्छा-शक्ति या सङ्कल्प कहते हैं। इच्छा-शक्ति से हम मस्तिष्क की चाहे जिन सेलों को शान्त कर सकते और चाहे जिन की क्रिया-शक्ति बढ़ा सकते हैं। इसका उदाहरण ध्यान की कल है। जिस वस्तु में हमारा ध्यान लग जाता है उसमें डूबने से ध्यान अपने आप आकर्षित हो जाता है। परन्तु जब हम किसी कठिन गणित के साध्य को समझना चाहते हैं या किसी लम्बे-चौड़े व्याख्यान देनेवाले के फेरफार के तर्क-वितर्क को ग्रहण करना चाहते हैं तब अपनी इच्छा-शक्ति से उसे फेर देते हैं। जब ध्यान लगा रहता है तब मस्तिष्क की सब सेलें, जिनका काम में आना साध्य के साधन अथवा व्याख्यान के समझने के लिए आवश्यक है, रक्त से भर जाती हैं। उनमें हलचल सी मची रहती है, और और सेलें सुस्त हो जाती मानो सो जाती हैं। यदि हमारा ध्यान पूर्ण रीति से जमा हो तो न तो आसपास की कोई वस्तु देख पड़ती है और न हम

जानते हैं कि हम कहाँ हैं। जो शब्द चारों ओर होते हैं उनको हम या तो सुनते ही नहीं या बहुत स्पष्ट सुनते हैं; और यदि अपने विचार को बदलना चाहे तो जितनी ही ध्यान में मग्नता होगी उतना ही हमको कठिन उद्योग करना पड़ेगा। ध्यान भी एक प्रकार की इच्छा-शक्ति है, जो काम ध्यान कर सकता है वही साधारण इच्छा करती है। सेलों को अपने वश में रखने और उनसे चटपट अपनी आज्ञा का पालन कराना इच्छा-शक्ति का काम है। उसका अभिप्राय यह है कि विशेष सेलों को, आवश्यकता पड़ने पर, आन्दोलन करने के लिए चाहे जितनी देर तक वाध्य करे और औरों को निश्चल कर दे। अन्य शक्तियों और योग्यताओं की भाँति इच्छा-शक्ति का भी अभ्यास होता है और उसकी वृद्धि होती है। यह बात विचित्र तर्काभास की भाँति देख पड़ती है। इच्छा-शक्ति को परिणत करने के लिए हमें इच्छा करनी चाहिए, इसका अभिप्राय यह हुआ कि हममें इच्छा-शक्ति होनी चाहिए। यह भी सौभाग्य है कि विशेष रोगों को छोड़कर यह शक्ति हममें कुछ न कुछ सदा रहती है। काम यही है कि उस थोड़ी सी शक्ति को लेकर उचित रीति से अभ्यास करना चाहिए। थोड़े ही अभ्यास से फल देखकर आश्चर्य होगा। अब हम एक पुरानी पुस्तक से कुछ लिखते हैं जिसका काग़ज़ पीला होकर अपनी प्राचीनता का प्रमाण दे रहा है:—

"इच्छा-शक्ति को पुष्ट करने के लिए तुम्हें प्रारम्भ में थोड़ा-

थोड़ा निरन्तर उद्योग करना चाहिए; जैसे तुम अभी बहुत दूर चलकर आये हो और थक गये हो तो तुरन्त न बैठ जाओ और दो-चार मिनट खड़े रहने के लिए अपने को बाध्य करो। यदि प्यास लगी है, जीभ तालू से लगी है, तो पानी के गिलास को—जो तुम्हारे लिए आया है—चटपट मुँह से न लगाओ; अपने को बाध्य करके उसे मेज़ पर रख दो, पानी की स्वच्छता को देखो फिर धीरे-धीरे पियो, एक ही दम सब न घुटक जाओ। यदि तुम्हारे पास अभी वह चिट्ठी आई है, जिसकी राह तुम बहुत दिनों से देख रहे थे तो उसे तुरन्त मत खोल डालो, और अपने को बाध्य करो कि जो काम तुम शुरू कर चुके हो वह समाप्त हो जाय। तुममें पढ़ते और लिखते समय झुके रहने की बुरी बान है, इस पर ध्यान करो और जो वाक्य आरम्भ किया है उसे बिना समाप्त किये ही उठ बैठो। सवेरे तुम्हारा बहुत जी चाहता है कि बिछौने पर कुछ देर और पड़े रहें। किन्तु सुस्ती न करो और उठ बैठो। जाड़ा हो या गर्मी, नित्य-क्रिया के लिए अपने को बाध्य करो और अपने काम में बिना टाल-मटोल के बैठ जाओ। अपने को सदा बाध्य करो कि जो कार्य्य उठाया है उसे समाप्त करो, चाहे वह कितना ही लम्बा क्यों न हो। पढ़ते समय या अनुवाद करते समय कोई ऐसा शब्द आ जाय जिसके अर्थ मे तुम्हें सन्देह हो तो अपने को कोष निकालने को बाध्य करो। बात करनेवाले के वाक्य, बिना टोंके, धैर्य के साथ सुनने के लिये अपने को बाध्य करो, और

उस पर ध्यान रक्खो, मुख्य करके तथा उस समय जब कि वे अपने सम्बन्ध मे कह रहे हों। तुम्हें एक काम करना है जिसे तुम पसन्द नहीं करते, तो उस काम को तुरन्त और उत्तमता से करने के लिए अपने को तुम बाध्य करो। तुम्हारे दाँतों मे पीड़ा है तो दाँत के डाक्टर के पास जाने मे, डर के कारण, विलम्ब न करो। ऐसे विचार मत करो कि कल जायँगे या अगले सप्ताह मे जायँगे। उसी दिन जाने के लिए अपने को बाध्य करो। जब देखो कि चित्त का उकताना बढ़ता जा रहा है तब धैर्य धरने के लिए अपने को बाध्य करो। यदि वाद-विवाद मे क्रोध का शब्द या कोई व्यङ्ग वचन अपने प्रतिवादी को कहकर तुम अपने चित्त को प्रसन्न किया चाहते हो तो अपने को चुप रहने के लिए बाध्य करो। तुम्हारे मन मे कोई बुरा विचार आ रहा है, तो जो सेलें इस बुरे विचार के साथ आन्दोलन कर रही हैं उनको शान्त करने के लिए अपने को बाध्य करो। उनकी ओर न तो ध्यान दो न उनसे तर्क-वितर्क करो, क्योंकि वाद-विवाद से उनमें एक नई शक्ति आ जायगी। उनमे बहुत सा रक्त चला जायगा और वह अधिक आन्दोलन करने लगेंगी। अपने को रोको और तुरन्त कोई दूसरी बात सोचने लगो। अपना सारा ध्यान किसी दूसरे विषय मे लगा दो जिससे दूसरी सेलें आन्दोलन करने लगें और अपनी इच्छा से उनमें बहुत सा रक्त भर दो जिससे उनका बल बढ़ जाय, वह अधिक चञ्चल हो जायँ और जो सेलें तुम्हारा काम बिगाड़ रही हैं वह रक्त-

हीन होकर निर्बल हो जायँ। तुम जो कुछ कर रहे हो—चाहे वह भारी काम हो चाहे मनबहलाव हो, पढ़ते-लिखते हो या वाद-विवाद करते हो या केवल खेलते ही हो—उसमे अधिक से अधिक ध्यान देने को अपने को बाध्य करो। सिद्धान्त यह है कि तुमको जो कुछ करना आवश्यक है उसे पूरा-पूरा और बिना विलम्ब करने के लिए जुट जाओ, यह काम, यह बात, चाहे तुम्हें बहुत उपयोगी न प्रतीत हो परन्तु इसको तुरन्त और पूर्ण रीति से कर डालना तुम्हारी इच्छाशक्ति की उन्नति के लिए तथा तुम्हारी शिक्षा के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इन्हीं और ऐसे ही उपायों से, जिनकी गिनती नहीं हो सकती, तुम अपनी इच्छा-शक्ति को अन्त में पक्की कर दोगे। अपने जीवन भर में एक बहुत बड़ा काम करने की बात नहीं है। थोड़ी देर के लिए वीर बनना बहुत सहल है, परन्तु बात ऐसे काम की है जो है तो छोटा किन्तु कठिन है और अपने को ऐसे छोटे-छोटे उद्योगों को करने के लिए बाध्य करना है जिनसे तुमको अभ्यास हो जाय और तुम बिना थके हुए नित्य ऐसा ही करते रहो। यह बात भी ठीक है कि अभ्यास करते-करते इन उद्योगों में दुख का अंश भी घटता जायगा और अभ्यास से वे उद्योग भी आप से आप होते रहेंगे, साथ ही साथ अन्तःकरण मे शक्ति बढ़ेगी और नैतिक ज्ञान से अत्यन्त लाभ होगा।

अब सुनो, पेयो (Payo) क्या कहता है। "इन्ही

हज़ारों कामों से, जो देखने में छोटे प्रतीत होते हैं, इच्छा-शक्ति की परिणति होती और उसमे दृढ़ता आती है। क्रिया से वृद्धि होती है। बड़े-बड़े उद्योग करने को न मिले तो हमे ऐसे छोटे-छोटे काम करने चाहिएँ जो हमको मिलते हैं। ऐसे ही कामों को सदा अपनी शक्ति भर पूर्ण रीति से करना चाहिए। हम कह चुके हैं कि इच्छा शक्ति का काम मस्तिष्क की सेलों का सुधार है। जब तुम्हारी इच्छा-शक्ति का अन्तिम उद्देश भलाई है तब इस सुधार से उन सेलों की सहायता हो जाती है जो सबकी सँभाल और हमारे विस्तार के लिए उपयोगी हैं और उन सेलों की शक्ति घटती है जिनकी उन्नति सब सेलों की उन्नति के प्रतिकूल पड़ेगी।

यही सिद्धान्त जातियों का है। साधारण जनता के लाभ के लिए जो प्राणी बनाये जाते हैं उनका अभिप्राय यह है कि एक-एक मनुष्य सबके साथ अपनी क्रिया-शक्ति को जिधर चाहे फैलायें; जहाँ तक हो सके उन्नति करे; परन्तु शर्त यह है कि दूसरों की उन्नति में बाधा न पड़े। जब कोई मनुष्य ऐसी प्रकृतियाँ दिखाये जैसे डाका, ख़ून—जिससे औरों की उन्नति में बाधा पड़ती है तब सबकी भलाई के लिए यह परम आवश्यक है कि उसकी क्रिया-शक्ति रोक दी जाय।

२—धर्म और उपदेश

(कुछ कर्त्तव्य)

हम लोगों को न भूलना चाहिए कि जैसे-जैसे हमारा अधिकार बढ़ता और हमारे काम बढ़ते हैं वैसे ही वैसे, हमारे कर्त्तव्य भी बढ़ते जाते हैं। इसी कारण हमको नीचे लिखे हुए धर्म्म निबाहने चाहिएँ,—

माता-पिता और दादा-दादी के साथ अपना धर्म्म।

भाई और बहिनों के साथ अपना धर्म्म।

अपने कुटुम्ब के और लोगों के साथ अपना धर्म्म।

उन लोगों के साथ अपना धर्म्म जो हमको शिक्षा देने मे लगे हैं।

मित्रों के साथ अपना धर्म्म।

स्त्री का धर्म्म पुरुष के साथ और पुरुष का धर्म्म स्त्री के साथ।

अपने बच्चों के साथ अपना धर्म्म।

अपने सेवकों के अर्थात् उन लोगों के साथ अपना धर्म्म जो हमारा कुछ काम करते और हमारे सुख की सामग्री इकट्ठी करते हैं।

अपने स्वामियों के साथ अपना धर्म्म, इसके अन्तर्गत वे धर्म्म भी हैं जो हमारे उद्यम ने हम पर डाले हैं।

उन लोगों के साथ अपना धर्म जिनको हमारी सहायता

की आवश्यकता है। जैसे रोगी, बुड्ढे, लूले, लँगड़े, अनाथ, और ऐसे लोग जो नासमझ, निर्बल अथवा धर्म्म-नीति मे कच्चे हैं।

समाज में अपनी स्थिति और अपनी आर्थिक दशा से सम्बन्ध रखनेवाले धर्म्म।

जिस गाँव या नगर मे हम रहते हैं अथवा जिस प्रान्त के हम रहनेवाले हैं उसके साथ अपना धर्म।

अपने देश और अपनी जाति के साथ अपना धर्म्म।

मनुष्यमात्र के साथ अपना धर्म्म।

सारे संसार के साथ अपना धर्म्म।

जब हम कहते हैं कि हमको अपने देश के साथ प्रेम करना चाहिए और अपने देश की सेवा करनी चाहिए तब इसका अभिप्राय यह नहीं है कि हमें दूसरे देशों की स्वतंत्रता मे बाधा डालनी चाहिए; अपने इच्छानुसार काम करने को उन्हें बाध्य करना चाहिए या उनके राज्य का कोई अंश दबा लेना चाहिए। जब कभी ऐसा अवसर पडे तब हमारा धर्म यह है कि उन विषयों में उन्नति करें जिनसे हमारे देश का जीवन और मनुष्यमात्र का जीवन सुखी तथा समृद्ध होकर उन्नति करे।

हमारे धर्म्मों की सूची में तुम देख सकते हो कि वे सारे धर्म आ गये जिनका निर्वाह हमको अपने साथ करना है, और जिनका उन सारी समाजों के साथ करना है, वे छोटी हों या बड़ो, जिनके कि हम अङ्ग हैं। इसका अभिप्राय यह है कि

हमारे धर्म्मसंग्रह मे वे सारे काम आ जायँगे जिनसे बिना दूसरे को हानि पहुँचाये विशेष व्यक्ति की पूरी उन्नति और समृद्धि हो सकती है और उस समाज की भी जो कि इन व्यक्तियों का समुदाय है। इन सारे धर्म्मों का एक उद्देश है और वह यह कि बड़ी से बड़ी संख्या का बड़ा से बड़ा विस्तार हो।

हमको न भूलना चाहिए कि हमारे निर्बल भाइयों के प्रति जो हमारे धर्म हैं उन्हीं में कुछ धर्म अपराधियों के प्रति भी हैं। हमे उनको धर्म के पथ पर लाने के लिए, नीति मानने, सफ़ाई से रहने और किसी अच्छे और उपयोगी काम में लगाने का उद्योग करना चाहिए जिसकी उनमें स्वाभाविक, शारीरिक और मानसिक योग्यता हो, और वे सन्मार्ग पर आ जायँ। सुधारने का इससे बढ़कर और कोई उपाय नहीं है।

पशुओं के साथ भी हमारे कुछ धर्म्म हैं। पालतू पशुओं के साथ दया का बर्ताव करना चाहिए और उनकी आवश्यकताओं को बिना असमंजस पूरी करने मे दत्तचित्त रहना चाहिए। जो पशु पालतू नही हैं उनको अनुचित दुःख न देना ही हमारा धर्म है।

एल. बोर्डो (L. Bourdeaux) कहता है "मनुष्य भी इस समुदाय का एक अंश है; इसी से निकला है और इसी में समा जायगा। इसी से, जहाँ तक उसकी बुद्धि काम करे, उसे इस समुदाय के नियमों का पालन करना चाहिए।

मनुष्य की प्रवृत्ति विश्व की प्रवृत्ति के अनुकूल होनी चाहिए। ऐसा करने से वह विश्व के जीवन का भागी होगा; कर्म-साक्षी की भाँति नहीं, ध्यानमात्र मे नहीं, बरन वास्तव में और कर्म करने मे। इसमें सन्देह नही कि मनुष्य इस अनन्त विश्व का एक कणमात्र है। परन्तु यह कण चेतन है, इसमे बुद्धि है और इच्छा-शक्ति है। इसका प्रभाव सूक्ष्म होने पर अस्तित्व रखता है और कार्य की शृङ्खला मे इसका काम ऐसा ही है जैसे महासागर के एक-एक जल-बिन्दु मे भरा है। जो दवाव यह डालता या इस पर पड़ता है उससे सारे विशाल जलाशय की स्थिति रहती है। जीवन सार्थक तभी होगा जब वह अनन्त और अक्षय्य कामों मे समझ-बूझकर, मिलकर काम करे। यूनान के प्रसिद्ध विद्वान् अरस्तू (Aristotle) ने कैसी अच्छी बात कही है—'मनुष्य-जीवन की सच्ची सार्थकता उसके कामों के गौरव से जाँची जाती है और उसके कर्त्तव्यों के बढ़ने के साथ बढ़ती है।' यदि यह ठीक है तो चेतना-शक्ति-सम्पन्न जीव के लिए इससे बढ़कर कौन सा काम बताया जा सकता है। उसके लिए इससे बढ़कर कौन उद्देश हो सकता है कि वह अपने को अनन्त, अक्षय्य, (ब्रह्म) से अभिन्न माने और विश्व के जीवन मे साझी बनने के लिए अपनी सारी कर्म-शक्तियों को उसी ओर प्रवृत्त करे ?"

हम सब जानते हैं कि प्रकृति क्या चाहती है। हम बार-बार कहेंगे कि प्रकृति सबसे बढ़कर उत्साही, सबसे बढ़कर

चैतन्य, और धर्म-नीति-युक्त जीवन चाहती है। वह चाहती है कि सारे विश्व के जीवन का भरपूर फैलाव और परस्पर विरोध-हीन विकास हो जाय। वह शारीरिक, मानसिक, धर्म-नीतियुक्त और सौन्दर्ययुक्त जीवन चाहती है जिसकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहे, जिसका बल बढ़ता जाय, और जो परिपूर्णता के शिखर पर पहुँचे। वह क्षण-क्षण वही चाहती है जो हमारे लिए सम्भव है। वह जीवन की उन्नति चाहती है। उसकी इच्छा यही है कि हम लोग मिलकर काम करें, समझें, सहानुभूति और प्रेम करें। उसकी यही इच्छा है कि हम सारे प्राणियों के साथ सहानुभूति करें। वह चाहती है कि हमारा हृदय इतना बड़ा हो जाय कि इसमें सारा विश्व समा जाय।

हम लोगों को प्रकृति की आज्ञा माननी चाहिए। इस समस्त विश्व की आज्ञा, बुद्धि के समझाने से नहीं, मुख्य करके प्रेम से माननी चाहिए। विश्व को बड़े प्रेम से प्यार करना चाहिए। जो उसका उद्देश है वही अपना भी उद्देश मानें और जिधर वह चले उधर ही हम भी चलें, उस समुदाय के सहायक बनें जिससे उचित रीति से अपने जीवन का निर्वाह हो।

हम लोगों को समुदाय से मिलकर काम करना चाहिए और उसके प्रयोजन को अपना प्रयोजन मानना चाहिए। यही हमारा कर्तव्य है।

३—फुटकर उपदेश

अपने स्वास्थ्य और शरीर-बल को ठीक रखने के लिए सफ़ाई के नियमों का पालन करो। इससे तुम और भी औरों के काम आ सकोगे।

डाक्टर जे. हेरीकूर (Dr. J. Hericourt)—"सफ़ाई का ज्ञान हमारी शिक्षा-प्रणाली मे या तो निपट भुला दिया गया है या बहुत थोड़ा सिखाया जाता है, परन्तु यही धर्म-नीति की जड़ है। सफ़ाई ने ऐसे नियम बनाये हैं जिनसे प्रत्येक व्यक्ति का स्वास्थ्य बना रहता है। इसी से इन्द्रियों का संग्राम नित्य का नियमित व्यायाम हो जाता है। यही इच्छा-शक्ति का अमूल्य प्रवर्त्तक है और यही परस्पर सम्बन्ध का सच्चा अर्थ बताती है, क्योंकि यही दिखा देती है कि इस महान् नियम का अपराध करने का कैसा भयानक दण्ड भोगना पड़ता है। यही नियम उन सारे समाजों का मूलस्तम्भ है जो आगे प्रकट होंगे।"

एल. बोर्डो (L Bourdeaux)—"जीवन के नियमों के अनुकूल जो काम होगा वह इसकी परिपूर्णता की या तो एक अवस्था है या उसकी चेष्टा है और इससे जीवन की वृद्धि होती है। जीवन के नियमों के प्रतिकूल जो काम होगा वह इसे संकीर्ण स्थान मे दबा देगा और इसकी नियमित समृद्धि में बाधा डालकर हानिकारक होगा। इसका दण्ड भी अनिवार्य है। पहले धमकी सी प्रतीत होती है पर पीछे दमन हो जाता है।"

भोजन को अच्छी तरह पचाओ। इससे यह समझना चाहिए कि जो कुछ खाओ वह शरीर मे लग जाय। भोजन सादा हो और पुष्टिकारक; न बहुत खाओ न थोड़ा, और जो कुछ खाओ उसे अच्छी तरह चबाकर खाओ। डाकृर रिनोल (Dr. Regnault) कहते हैं--जब खाना अच्छी तरह चबाया नहीं जाता तब परिणाम वही होगा कि पेट के भीतर का पित्त उस भोजन पर अपना व्यापार नहीं कर सकता जो चबा-चबाकर उचित रूप में नहीं आया। इसी से यह पेट मे सड़ता है, पेट के रोग उत्पन्न करता है और अनेक प्रकार के गठिया आदि रोगों (Arthritis) का निमित्त-कारण बन जाता है। हम लोगों को यह भी स्मरण रखना चाहिए कि राल अपना पूरा-पूरा काम तभी करेगी जब खाने में अच्छी तरह मिल जाय। यह काम पूर्ण रीति से मुँह ही मे हो सकता है और इसमें देर लगती है।

डाकृर जैके (Dr. Jacquet) सावधानी से भोजन चबाना अजीर्ण, मोटाई, गठिया, बाई, उकवत आदि रोगों से बचने का उपाय बताते हैं।

साल में कम से कम दो बार दाँत के डाकृर के पास जाओ। तुम्हारे दाँत थोड़े रह जायँगे या हिल जायँगे तो तुम भोजन को न तो अच्छी तरह चबा सकोगे और न पचा सकोगे।

शराब किसी रूप मे हो उससे बचे रहो। उबाला पानी पियो। उबालने से उसके रोग-कीटाणु मर जाते हैं। सारे

जीवधारियों के पीने के लिए पानी ही बना है और मनुष्य भी एक जीव ही है।

हम इस अवसर पर शराब के दोष संक्षेप से बताना चाहते हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि थोड़ी सी शराब नित्य पीनेवाले के भी, जिसको कभी नशा नहीं होता, शराब का विष व्यापा रहता है। शराब का सत्त "अलकोहल (Alcohol)" कहलाता है। अलकोहल थोड़ा-थोड़ा पीने से सिर पर नहीं चढ़ता (या जैसी बान पड़ गई हो कम चढ़ता है), परन्तु इसका हानिकारक काम ज्यों का त्यों बना रहता है। डाक्टर वील मन्टू (Dr. Weill Mantou) के वाक्य का संक्षेप यह है:—

"शराब पीनेवाले, जिनके दोष सर्वसाधारण के सामने प्रकट न हों, या तो बहुधा क्षयरोग से पीड़ित हो जाते हैं या थोड़ी ही उमर में कलेजे की बीमारी, गुर्दे, हृदय या नसों के रोगों से पीड़ित हो जाते हैं, क्योंकि शराब पीने से ये सारे अङ्ग निर्बल हो जाते हैं। उनकी सन्तान जन्म से पहले ही निर्बल हो जाती है। इस विष का बुरा परिणाम शरीर के एक-एक अङ्ग में अपना गुण दिखाने लगता है और सारी नसों में विष भर जाता है। शराब का असर रोग, घाव आदि सबको दु:साध्य कर देता है और जब कभी किसी अङ्ग पर शस्त्र लगाने का काम पड़ा तब उसके अच्छे होने मे बाधा डालता है। पीनेवाले का स्वभाव तो बिगाड़ता ही है उसकी सन्तान पर

इसका बुरा असर पड़ता है और सन्तति बलहीन और निकृष्ट हो जाती है। यह अलकोहल ही का गुण है जो इतने जड़, मिरगिहे, निर्बल और पुराने रोगी, पक्के अपराधी और पागल संसार मे देख पड़ते हैं।"

डाक्टर मोरिस ब्वाइजे (Dr. Maurice Boigey) ने लिखा है कि डाक्टर ल ग्रान (Dr. Le Gran) ने मद पीने के बुरे परिणाम की जॉच २१५ कुलों मे की, जिनमे सब मिलाकर ५०८ प्राणी रहते थे। एक ही पीढ़ी बीतने पर उनमे १६८ शारीरिक और मानसिक बलहीन निकले। दो पीढ़ी पीछे प्रत्येक कुल मे एक न एक बलहीन निकला। तीसरी पीढ़ी मे १७ ही मनुष्य बचे जिनमे सबके सब या तो बल-हीन थे या उनकी बाढ़ रुक गई थी।

अलकोहल के प्रयोग से विशेष कर कड़ी गरमी और कड़ी सरदी के दिनों मे सिर-पीड़ा की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। इसी से समझना चाहिए कि जाड़े के दिनों मे यह कहकर शराब पीना, कि कुछ गरमी आ जायगी, कितनी मूर्खता है। पीना चाहो तो थोड़ी सी चाय पियो, क़हवा पियो, गरम दूध पियो या चोकोलेट (कोको में शकर मिलाकर) पियो।

कड़ुई शराब और लिकर (Liquor) से भी दूर रहो। लिकरों मे अलकोहल तो रहता ही है उनमे सौंफ़, पोदीना, और अनेक वनस्पतियों के रस भी पड़े रहते हैं। इन रसों मे एक प्रकार का विष तो रहता ही है साथ ही अलकोहल के संयोग से

ये और भी हानिकारक बन जाते और विष को विषैला कर देते हैं। सफ़ाई के नियम सारे 'लिकरों' को दूषित ठहराते हैं।

दवा मिली हुई शराबों से भी सावधान रहो। इसको विलायत की स्त्रियाँ पीने लगी हैं।

बच्चों को कभी एक बूँद शराब न दो। जवानों को अलकोहल, किसी रूप मे क्यों न हो, छूना न चाहिए। यह पहले उनकी धर्म-बुद्धि नष्ट कर देता है, शारीरिक हानि तो पीछे करता है।

अफ़ीम से भी बहुत बचना चाहिए। अफ़ीम खानेवाले और अफ़ीम पीनेवाले दोनों इसका बुरा असर जल्द भोगने लगते हैं। डाक्टर हेल्म (Dr Helme) ने अफ़ीम-सेवन के बुरे परिणाम को इस भाँति संक्षेप में वर्णन किया है:—

"अफ़ीम खाने से शरीर मे रक्त की चाल धीमी पड़ जाती है। रक्त गाढ़ा और लसदार हो जाता है। कलेजा जो शरीर से विप छानकर फेंका करता है वह भी मन्द हो जाता है। गुर्दे, जो सदा शरीर का विषैला मल निकालने मे व्यग्र रहते हैं, अपना काम कम कर देते हैं। और हृदय, अफ़ीम के असर का चाबुक पड़ते ही, थके घोड़े की भाँति लँगड़ाता चलता है। अन्त को उसकी गति रुक-रुक जाती है। सेलों के मन्द हो जाने से शरीर मे विष मारनेवाले रसों की उत्पत्ति घट जाती है और शरीर मे रोग रोकने की शक्ति घटने से साधारण रोग-कीटाणु उसको दबा लेते हैं, जैसे इनफ्लुइञ्जा

(Influenza), श्रावँ और विषम-ज्वर के कीटाणु। मस्तिष्क को वास्तविक पदार्थों का ज्ञान नहीं होता और विचार-शक्ति घटने से औंधा-सीधा सोचा करता है। इस वात के उदाहरण में अँगरेज़ी के दो प्रसिद्ध लेखकों का नाम लिया जाता है, कोलरिज (Coleridge) और डि किंसी (De Quincey)। डि किसी ने जो कुछ लिखा है वह ऐसे समय का है जब उसका नशा उतर जाता था। उसके लेखों मे अत्युक्ति का भी विचार रखना चाहिए। कोलरिज के विषय मे तो स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यों उसकी अफ़ीम की मात्रा वढ़ती गई, उसकी प्रतिभा घटती गई।"

विचारने की वात है कि मनुष्य ही एक जीवधारी है जो जान-बूझकर अपने शरीर में विष फैलाता है। इस विषय मे पेड़-पैाधे हमसे अधिक समझदार हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक लिलियनफ़ेल्ड (Lilienfeld) आदिक ने अनेक प्रयोग करके यह दिखा दिया है कि पैाधों की जड़ें विषैली वस्तु छोड़ देती हैं और ऐसी वस्तु की ओर दैाड़ती हैं जिसमें उनके लिए कुछ पुष्टिकारक सामग्री है।

अच्छी तरह साँस लो। इसको वैज्ञानिक यों कहेंगे कि जितनी ओषजन ग्यास (Oxygen gas) की आवश्यकता है उतनी हवा से खींच लो। तुमको जितना समय मिले, खुली हवा में बिताओ। अपने कमरे को सदा खुला रक्खो।

जाड़ा हो या गर्मी, रात भर खिड़कियाँ खुली रहें। इस बात का विचार रक्खो कि तुम्हारे शरीर को हवा का झोंका न लगे।

अपने कमरे को पूर्ण रीति से हवा के आने-जाने योग्य करने की आवश्यकता यों समझ सकते हो कि चौबीस घंटे मे तुम्हारे फेफड़ों तक १०००० लीटर हवा पहुँचे तो तुम्हारे काम भर को ओषजन मिल जाय।

डाक्टर पेटर (Dr. Peter) कहते हैं—हम लोगों के सोने के कमरो की ठहरी हुई हवा रात भर फेफड़ों को ऐसा तर कर देती है जैसे किसी ने उन्हें साँस के गन्दे कुण्ड मे डुबा दिया हो। इसमे फेफड़ों से निकला हुआ कार्बोनिक ऐसिड (Carbonic acid) और अनेक प्रकार की गैसें और शरीर की खाल से निकली हवाएँ मिली रहती हैं। इसी कारण सबेरे बाहर की हवा ऐसी शुद्ध रहती है कि उसमे साँस लेने से सुख मिलता है और कमरे की हवा में भभक आती है। फेफड़ों के निरन्तर साँस लेने से यह हवा साँस लेने योग्य नहीं रह जाती। घर की हवा दिन-रात ऐसी ही शुद्ध रहनी चाहिए जैसी बाहर की होती है।

अपने कमरे मे जितनी धूप और जितना उजाला आ सके उतना आने दो। रोग के कीटाणुओं को मारने के लिए सूर्य की किरणों के बराबर कोई वस्तु नहीं है और प्रकाश से सेलो की गति बढ़ जाती है। इसका विश्वास तुमको अँधेरे में

रहनेवालों को देखने से हो जायगा, जिनके शरीर पीले और चेष्टा-हीन होते हैं।

अँधेरे स्थान स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं।

शुद्ध हवा सेवन करने के लिए कभी-कभी शहर के वाहर गाँवों में चले जाया करो। वाहर की हवा में रोग के कीटाणु कम रहते हैं; क्योंकि कीटाणुओं का जमाव वहीं होता है जहाँ मनुष्य अधिक वसते हैं। छः महीने की जाँच से जाना गया है कि रु डी रिवोली (Rue de Rivoli) की हवा मे, एक घनगज़ मे, ३२२० कीटाणु हैं और पार्क मो सुरी (Parc-mont Souri) मे केवल २५०। हवा के कीटाणु वहुधा धरती के पास रहते हैं। पेरिस (Paris) नगर मे भी ६० गज़ की उँचाई पर वढ़ जाने से १९८ रह जाते हैं और ४००० गज़ के ऊपर कीटाणुओं का नाम नहीं है। खुले समुद्र मे, समुद्र-तट से ८० मील की दूरी पर, १० घनगज़ हवा मे केवल ६ कीटाणु मिलते हैं।

उतना ही सोओ जितना आवश्यक है, अधिक नहीं। जव उठने का समय आ जाय तव झटपट उठ बैठो, पड़े न रहो। मनुष्य की अवस्था, उद्यम, और स्वास्थ्य के विचार से सोने के घंटे घटते-वढ़ते हैं। तुम आप समझ सकते हो कि तुमको कितनी वेर तक सोना चाहिए। मुख्य वात यह है कि अपना अमूल्य समय चारपाई पर पड़े-पड़े न विताओ।

नित्य स्वीडन (Sweden) वालों की रीति से थोड़ी देर तक

व्यायाम करो। इससे तुम्हारे हाथ-पाँव "चुस्त" रहेंगे। घर के बाहर के खेल खेलो—जैसे बाइसिकल पर चढ़ना, टहलना, तैरना, टेनिस, आदि। सयाने पुरुषों, स्त्रियों और लड़कों—सब को टेनिस खेलना चाहिए।

परन्तु ध्यान रक्खो कि खेलने में भी संयम रहे। जैसे थकावट आने लगे, खेल बन्द कर दो। अपने शरीर के बल पर अधिक दबाव न डालो। सैकड़ों वर्ष हुए, यह बात प्रसिद्ध हकीम जालीनूस (Galen) ने लिखी थी। "अधिक परिश्रम करने से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और बात-बात पर उसको कोई न कोई रोग दबा लेता है।"

अपना शरीर सदा बहुत ही स्वच्छ रक्खो। केवल ठण्ढे पानी से नहा डालने से काम नहीं चलता। कभी-कभी गरम पानी और साबुन की भी आवश्यकता है। चौबीस घंटे मे सयाने की देह से सेर भर पसीना निकल जाता है जिसको वह न देखता है न जानता है। गरमी और कठिन परिश्रम से पसीना अधिक निकलता है। पसीना है क्या? पानी, जिसमे कुछ खार और शरीर का मल मिला हुआ है। इसी कारण बार-बार साबुन लगाकर गरम पानी से नहाने की आवश्यकता है। मैला मनुष्य देखने मे बुरा लगता है और सूँघने मे तो और भी बुरा।

परन्तु इतना ही नहीं। खाल के छिद्रों से शरीर का मल तो निकलता ही है, हवा भी शरीर में आती-जाती है।

इनको बन्द कर दो तो जीव तुरन्त मर जायगा। किसी जीव की देह में ऐसा रङ्ग पोत दो जिसमे भीतर हवा न जा सके तो वह जी नहीं सकता। इसी कारण जिन लोगों की ऊपर की खाल बहुत सी जल गई है (जैसे खौलता पानी पड़ने से) वे नहीं बचते। इसी से हमको मैल से हानि समझ लेनी चाहिए। इससे खाल का काम रुक जाता है।

रोग के कीटाणु हमारी खाल मे व्यापे हुए हैं। तुम आप ही विचारो। डाक्टर रेमलिंगर (Dr. Remlinger) ने ५० सिपाहियों को नहलाया और एक-एक ने जल में जितने कीटाणु डाले उनको गिना। सबसे कम कीटाणुओं की संख्या ८½ करोड़ और सबसे बड़ी संख्या १२१२०००००० थी। इनसे भी पीछा छुड़ाना चाहिए।

हाथ बार-बार धोना चाहिए। खाना खाने से पहले हाथ धो डालना चाहिए और गन्दे काम करने के पीछे तो हाथ अवश्य धोना चाहिए। नखों की सफ़ाई पर भी ध्यान देना चाहिए। हाथों से मुँह, ओठ और नाक छूना बुरा है। डाक्टर विस (Dr. Weiss) कहते हैं "हम जानते हैं कि बहुत से रोग मुँह की राह से हमारे शरीर में प्रवेश करते हैं। अस्पतालों में देखा गया है कि जो कर्मचारी हाथ-मुँह धोकर खाना खाते हैं उनको हैज़ा आदि बीमारियों के दिनों में रोग नहीं पकड़ता और जो इन छोटी-मोटी सफ़ाई की बातों पर ध्यान नहीं देते उनको बड़ा दुःख झेलना पड़ता है।

बालों को भी कम से कम महीने में एक बार अवश्य धोना चाहिए।

सबेरे-साँझ मुँह को साफ़ करना चाहिए। मुँह में खाना लगा रहता है तो उसके सड़ जाने से कीड़े पड़ जाते हैं और वे दाँत और जीभ पर फैल जाते हैं। मुँह की गरमी के कारण वे शीघ्र ही फैलते जाते हैं। इसलिए दिन मे दो बार मुँह साफ़ करना आवश्यक है। मुँह साफ़ करने के लिए बढ़िया साबुन, पाउडर (Powder) या पेस्ट (Paste) अच्छा होता है। साबुन से गन्दगी निकल जाती है, दाँतों को हानि नहीं पहुँचती और थोड़े ही से साबुन मे काम चल जाता है। खाने के पीछे भी कुल्ली करना अच्छा है।*

बच्चों को किसी रोगी का मुँह न चूमना चाहिए। मेरी समझ मे नहीं आता कि बच्चों के ओंठों को किसी के गन्दे और पसीना-लगे गाल मे छुलाने से क्या लाभ हो सकता है। इससे लड़के को भी कष्ट होता है और मनुष्य को भी मुँह पर थूक का लगना अच्छा नहीं लगता।

---

* जिस पुस्तक का यह अनुवाद है वह यूरपवालों के लिए लिखी गई है। हमारे देश में तो नित्य दतून की जाती है।

तम्बाकू पीना बुरा है। यह हृदय के लिए बुरी है, आँख की रोशनी कम करके दाँतों की सफ़ेदी बिगाड़ देती है, जीभ सड़ा देती है, रुपया फूँक देती है और अपना दास बनाकर छोड़ती है।

बीमार होने पर सावधानी रखना और दवा करना उचित है परन्तु थोड़ी सी बात के लिए हलचल मचा देना बुरा है।

प्रकृति का अनुकरण करना चाहिए और जीवन को उत्तम बनाना चाहिए। एल. बोर्डो (L. Bourdeau) का वचन है:- विश्व को एक बड़ा भारी जीवधारी समझना चाहिए। अस्तोई (Stoics) सम्प्रदाय वाले जिसे "महान सर्व" कहते हैं वह शक्ति का अटूट भण्डार है और देश और काल के अनन्त रूपों मे उसका प्रादुर्भाव होता है। यह जीव, जिसके अन्तर्गत सब कुछ है, अपने गुणों को भिन्न-भिन्न व्यक्ति ही उत्पन्न करके परिणत करता है। ये व्यक्ति न हों तो इसका अस्तित्व ही अपरिच्छिन्न निर्विशेष और अनिर्दिष्ट रहे। इसके जीवन की परिपूर्णता सुव्यक्त करने के लिए इस एक को अनेक हो जाना चाहिए।*

इसलिए हमको सदा स्मरण रखना चाहिए कि हम भी उन्हीं भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में से एक हैं और अपने ही कामों,

---

*"एकोऽहं बहुः स्याम" यह श्रुति है।

अपने ही उद्योग और अपनी प्रवृत्तियों से इस **सर्व** के जीवन को जीता रखते हैं।

यह **सर्व** एक बड़ा भारी समाज है जिससे हम सब सभ्य हैं। हमको उचित है कि इस समाज के हितैषी बने रहे और इसकी उन्नति का प्रयत्न करें। तुम जिन छोटी-छोटी सभाओं के सदस्य हो उनकी हित-चिन्ता करते हो। इस बड़ी सभा के हितचिन्तक क्यों नहीं बनते?

क्या हमको उचित नहीं है कि विश्व जिस राह चल रहा है उसी राह चले? क्या हमको उचित नहीं है कि सुमहान् जीवन-निर्वाह मे इस "**सर्व**" की सहायता करे।

जिन सभाओं के हम सभ्य हैं उनके नियमों का प्रतिपालन करते हैं। इस विश्व से बड़ी कौन सी सभा है! हमको उसके नियमों का प्रतिपालन करना चाहिए।

जिस सभा के हम अङ्ग हैं उससे हम प्रेम रखते हैं। इस **सर्व** से बड़ी उदार सभा और कौन है? क्या हमको उचित नहीं है कि इसके साथ हृदय से प्रेम करे?

इस '**सर्व**' को मन से, ज्ञान से और ध्यान से प्यार करो। सारी प्रकृति से प्रेम रक्खो। विश्व का जीवन जीने के लिए अहङ्कार छोड़ दो। एल. बोर्डो (L Bourdeau) कहता है:—हम लोगों को संसार मे विशेष करके उस वस्तु से प्रेम करना चाहिए जो स्थायी है और सब जगह है, सबसे अच्छी है और सबसे कम अस्थिर है, जैसे—प्रकृति से और

कला-कौशल के सौन्दर्य से, विज्ञान से, सत्य व्यवहार से, धर्म-नीति से, अपने देश में सर्वहित और जीवनशक्ति से जो कि इस विश्व की शोभा है। जो बिना छोटे भावों से घृणा किये अपने हृदय को बढ़ाकर इन भावों से परिपूर्ण करता है उसे इनमे आनन्द का अटूट सोता, उद्योग का अचल उद्देश, विपत्ति में सान्त्वना और अपनी सारी शक्तियों की पूरी उन्नति मिल जायगी। नगरों में हम प्रकृति से कुछ दूर रहते हैं। हो सके तो गाँवों में चले जाओ।

तुम्हारे मस्तिष्क को भी व्यायाम की ऐसी ही आवश्यकता है। बाँह को काम में न लाने से उसका बल जाता रहता है। यदि तुम अपना हाथ रूमाल मे लटकाये रहो तो कई वर्ष मे वह निकम्मा हो जायगा। मस्तिष्क भी बेकाम रहने से निकम्मा हो जाता है।

तुम्हारी इच्छा-शक्ति प्रबल होनी चाहिए। यदि ऐसा नहीं है तो तुम उसको दृढ़ करने का उद्योग करो। सींचने और खाद देने से मुरझाया पौधा भी बढ़कर पेड़ हो जाता और फूलता-फलता है। परन्तु इच्छा-शक्ति और हठ एक नहीं हैं।

प्रत्येक काम बुद्धिमानी से करो। इससे मेहनत कम लगती है और समय की बचत होती है।

जहाँ तक हो सके, जो करो उसे उत्तमता से करो।

किसी काम को बुरी तरह करना न करने ही के बराबर है। उसे फिर से आरम्भ करना चाहिए। उसे बार-बार दुहराना चाहिए। जब तक काम ठीक न हो जाय, हिम्मत न हारना चाहिए।

हर एक काम को जी लगाकर और मेहनत के साथ करना चाहिए, परन्तु जल्दी न करनी चाहिए। जल्दबाज़ी में काम चौपट हो जाता है। प्रकृति का अनुकरण करो, प्रकृति न कभी जल्दी करती है और न कभी सुस्ती।

प्रत्येक काम मे ध्यान लगाने की आवश्यकता है। बे-मन का काम अच्छा नहीं होता। यदि तुम्हारा ध्यान और कहीं है तो तुम केवल तरङ्ग में बह रहे हो और अपने काम के विषय मे कुछ नहीं जानते।

तुम्हारी शिक्षा पाठशाला छोड़नें के साथ समाप्त नहीं हो जाती। तुम तो जीवन भर के विद्यार्थी हो। यदि सदा नई बातें सीखते और पढ़ते न रहोगे तो तुम जो जानते हो वह भी भूल जाओगे।

कनफूशो (Confucius) ने कहा है—"पुरानी बातें न भूलो और नई सीखते जाओ। तुम पण्डित बन जाओगे।"

एक साथ बहुत न सीखो। जो सीखो उसे अच्छी तरह सीखो, जिससे उसे फिर सीखने की आवश्यकता न रहे। कण-कण जोड़ने से तुम्हारे ज्ञान की राशि पहाड़ हो जायगी।

इस छोटे जीवन-काल मे तुम सब कुछ नहीं सीख सकते। थोड़ा-बहुत ज्ञान तुमको हर एक बात का होना चाहिए।

तुम्हारी मानसिक उन्नति एक ही बात के जानने से पूरी नहीं हो सकती। यदि तुम केवल विज्ञान या कविता जानो तो तुम्हारा ज्ञान उत्तम नहो है। तुमको अनेक प्रकार की विद्याओं और कलाओं का ज्ञान होना चाहिए। ऊपर कहा जा चुका है कि कोई पुरुष वैज्ञानिक, कवि, चित्रकार आदि सब कुछ नहीं हो सकता परन्तु तुम्हें सारी कलाओ का इतना ज्ञान होना चाहिए कि सब तुमको अच्छी लगे और सबके गुणग्राहक हो। तुम्हारा ज्ञान-सम्बन्धी जीवन भी पूर्ण और ओजस्वी होना चाहिए। सांसारिक काम-काज के विचार से और अपने को सच्चा उपयोगी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि सबका थोड़ा-थोड़ा ज्ञान प्राप्त करने का उद्योग भी करते रहो और एक कला में सिद्धहस्त भी हो जाओ। अपने गढ़ के

बीच में एक ऊँची अटारी भी बना डालो और यह भी न भूलो कि यह ऊँची अटारी तभी अच्छी लगेगी जब ऐसे मकानों के बीच मे हो जो छोटे होने पर भी सुदृढ़ बने हुए हैं और इतने बड़े हैं कि सब मिलकर एक उत्तम समुदाय बन जाते हैं।

तुम कितना ही उद्योग करो, तुमको बहुतेरे ऐसे मिलेंगे जो तुमसे बढ़कर कला-प्रवीण हैं। तुम उनसे कम जानते हो। इसके लिए तुमको लज्जित न होना चाहिए। लज्जित होने की बात यही है कि समय व्यर्थ नष्ट हो।

अपनी आत्मा को शुद्ध और परिणत करने का प्रयत्न करो जिससे तुम सबकी सेवा कर सको। तुम्हारा जितना ही अधिक ज्ञान होगा उतने ही तुम बढ़कर उपयोगी हो जाओगे, तुम्हारे मानसिक विनोद उतने ही उदार और कुतूहल-पूर्ण होंगे और उनकी संख्या अधिक होगी।

प्रत्येक उद्योग जिससे जीवन की रक्षा है एक अच्छा काम है; क्योंकि व्यक्ति को चारों ओर पसरना सम्भव होना चाहिए। रक्षा दो प्रकार की होती है; एक प्राणों की, दूसरी धार्मिक और मानसिक। जीते रहे और बुद्धि नष्ट हुई या पाप की प्रवृत्ति समा गई तो वह जीवन जीवन नहीं। हलवाहे, थवई, रोटी बनानेवाले, लड़के पढ़ानेवाले, वैद्य, वैज्ञानिक ऐसे काम कर रहे हैं जिनसे मनुष्यमात्र का हित है और शराब बनाने और बेचनेवाले जीवन की हानि कर रहे हैं।

एल. बोर्डो (L. Bourdeau) कहता है कि मनुष्य का काम

चिरस्थायी होता है, इसी से जिस समाज का वह अङ्ग है उसमें अपनी स्थिति का एक चिह्न छोड़ जाता है। उसने अपने जीवन भर मे जो उपयोगी काम किये, जो उदार विचार उसने आप अनुभव किये या औरों मे उपजाये, जो सौन्दर्य उसने आप समझा या जिसके प्रकट करने का वह कारण हुआ, जो सत्य उसने आप ढूँढ़ निकाला या औरों को बताया, जो न्याय या धर्म के काम उसने आप किये—सबका परिणाम अच्छा होता है जो दूर दूर फैलकर मनुष्यमात्र की सम्पत्ति बन जाता और सभ्यता के ख़ज़ाने को बढ़ाता है। इस रीति से वह उस ऋण को चुकाता है जिसे मनु ने "पितृऋण" लिखा है। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य को जो लाभ होते हैं उनके बदले मे उसे वैसे ही लाभ औरों के लिए छोड़ जाना चाहिए। इसके प्रतिकूल,—जितनी बुराई की, जितने दुखों का कारण हुआ, जितने अयोग्य अनुचित विचार किये और झूठे भाव अपने चित्त में बसाये, जितना बुरा आदर्श वह आप बना, और जो-जो सामाजिक उपद्रव उसने किये सबसे उसकी हानि हुई, उसके कुल की हानि हुई, उसके समकालीनों की हानि हुई और जो लोग आगे होनेवाले हैं उनकी सबसे बढ़कर हानि हुई; क्योंकि उनको ऐसे हानिकारक पदार्थ के दूर करने में कठिन परिश्रम करना पड़ेगा। हमारा ऐसा कोई काम नहीं है जो आगामी जीवन के हित या अहित करनेवाली दशा न उत्पन्न करे। जो मनुष्य नीति और धर्म के अनुकूल काम

करता है वह मनुष्य की उन्नति के धन की वृद्धि करता है, जैसे कि मज़दूर अपनी मज़दूरी से, प्रेमी-हृदय अपने प्रेम से, कारीगर अपने सौन्दर्य के आदर्शों से, वैज्ञानिक अपने आविष्कार से, भला आदमी अपनी भलाई से, उदार अपनी उदारता और अपने दान-से वृद्धि करता है। सभ्यता छोटे-छोटे लाभों से मिलकर बनी है जो एक-एक व्यक्ति के उद्योग से नित्य इकट्ठे हो रहे हैं।

अपनी स्मरण-शक्ति बढ़ाओ परन्तु ऐसा न हो कि तुम्हारी समझ और तुम्हारे विवेक में बट्टा लग जाय।

अपना अमूल्य समय खोये बिना और अनेक कामों मे कौन-सा काम करना चाहिए इस उलझन मे पड़े बिना, सवेरे कैसे कार्य आरम्भ करना चाहिए, इसके लिए यह उपयोगी है कि पिछली रात को सोने से पहले दूसरे दिन जो-जो काम करने हैं उनकी सूची बना लो। इस सूची मे पहले ऐसे काम लिखो जिनका करना आवश्यक है, कहाँ-कहाँ जाना है और किस-किसको पत्र लिखना है। और यदि कोई विशेष विघ्न न पड़ जाय (जैसा कि बहुत कम होगा), दिनचर्या को पूर्ण किये बिना पलँग पर न लेटो।

बिना नियम के उद्योग करना, एक काम छोड़कर दूसरे काम को दौड़ना कर्म का आभास मात्र है, और व्यर्थ है। कोरी धूमधाम है।

अपने उद्योग में सफल न हुए तो निराश न हो। तुम्हारे

लिए इतना ही बहुत है कि तुमने सफलता के लिए भरपूर प्रयत्न किया*। धार्मिक-उन्नति मे तुम्हारा प्रयत्न कदाचित् सफलता से बढ़कर लाभकारी हो जायगा।

एपिक्टीटस (Epictetus)—निराश मत हो, अखाड़े के उस्तादों का अनुकरण करो। जब कोई चेला गिरा दिया जाता है तब कहते हैं कि उठो और फिर लड़ो।

मार्कस औरीलियस (Marcus Aurelius)—जो बुद्धि के नियमानुकूल काम करने मे तुमको सदा सफलता नहीं होती तो न तो उदास हो, और न निराश। काम न हुआ तो फिर हाथ लगाओ।

कनफूशी (Confucius)—जो गुण सीखने में हाथ लगाओ वह गुण जब तक तुम्हे न आ जाय, उसको मत छोड़ो। तुम जो जानना चाहते हो वह उत्तम है या नहीं इसका विचार न करो परन्तु जब किसी बात की जाँच मे लग गये तो उसे जब तक पूरा-पूरा समझ न लो, मत छोड़ो। किसी बात का ध्यान करो परन्तु जब ध्यान करने लगो तो जब तक जो बात तुम चाहते हो, तुम्हें न मिल जाय, उसका ध्यान न छोड़ो। किसी छानबीन में लगो, जब उसमे हाथ लगाया तो जब तक उसकी पूरी छानबीन न हो जाय उसको न छोड़ो। कुछ भी काम करो, उसको करने लगे तो जब तक पूरा न हो जाय उसे मत छोड़ो। कोई एक ही प्रयत्न से काम सिद्ध कर ले तो

---

* यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ?

तुम सौ बार प्रयत्न करो। कोई दस प्रयत्नों में सफलता पाये तो तुम हज़ार प्रयत्न करो।

"मनुष्य इस रीति से काम करे तो जड़ होने पर भी चैतन्य, निर्बल होने पर बली हो जायगा।"

मार्कस औरीलियस (Marcus Aurelius)—"तुम्हारे अच्छे गुणों की कोई प्रशंसा नहीं करता" "बहुत अच्छा" ऐसे भी तो बहुतेरे गुण हैं जिनके विषय में तुम यह कहते हो "मैं इसके योग्य नहीं" तो फिर वही काम करो जिसकी तुम मे योग्यता है। ईमानदार हो, मेहनती हो, भोगों को लात मारो, थोड़े में सन्तुष्ट रहो*। तुम्हारी चालढाल से प्रकट हो कि तुम स्वतन्त्र हो, उदार हो, भोगों से अरुचि रखते हो, टुच्चेपन और टीम-टाम से दूर भागते हो। क्या तुम नहीं देखते कि कितने ऐसे काम हैं जिनमे तुम आज से हाथ लगा सकते हो और जिनके बारे में तुम यह नहीं कह सकते कि हम इसके योग्य नहीं या हममे इतना बल नहीं।

एपिक्टीटस (Epictetus)—यह असम्भव है कि हमसे कभी भूल-चूक न हो परन्तु यह सम्भव है कि हम सदा साव-धान रहें जिससे कभी भूलचूक न होने पावे।

तुमने बहुत से ऐसे सङ्कल्प किये जिनको तुम पूरा न कर सके। परन्तु इसका यह परिणाम न होना चाहिए कि नये सङ्कल्प न करो। प्रत्येक अच्छा सङ्कल्प तुमको कुछ दिनों,

---

* यदृच्छालाभसन्तुष्टः— भगवद्गीता।

कुछ घण्टों और कुछ क्षणों तक सन्मार्ग पर रखता है। इतना ही क्या कम है और इससे यह भी हो सकता है कि इसकी बान पड़ जाय।

एपिक्टीटस (Epictetus)—एक बान उसके प्रतिकूल बान डालने से छूट जाती है। सावधान रहो कि बुरी बान न पड़ जाय। व्यर्थ छोटी-छोटी टेवे भी हानि करती हैं।

मार्कस औरीलियस (Marcus Aurelius)—जब किसी के औगुन देखकर तुम्हें बुरा लगे तब तुम अपने भी औगुन देखो और सोचो कि तुम भी ऐसे ही बुरे काम करते हो।

एपिक्टीटस (Epictetus)—तुम्हारे सच्चे त्यौहार वे हैं जिनमें तुम प्रलोभन को जीत लेते या अभिमान, मत्सर, परनिन्दा, द्रोह, विषयवासना और बिना विचारे काम करने की प्रकृति को नष्ट करते या घटाते हो, या किसी ऐसे दोष को दूर करते हो जिसके तुम वशीभूत हो रहे हो। इन कामों के लिए ईश्वर की पूजा करना, कोई बड़ा अधिकार पाने की अपेक्षा अधिक आवश्यक है।

मेन्शियस (Mencius)—"एक मनुष्य नित्य अपने पड़ोसी की मुर्गियाँ चुराया करता है।" किसी ने उससे कहा—"भाई, यह अच्छा काम नहीं।" उसने उत्तर दिया, "मैं भी इस लत को धीरे-धीरे छोड़ देना चाहता हूँ। साल भर तक मैं महीने में एक ही मुर्गी चुराऊँगा। उसके बाद इस लत को छोड़ दूँगा।" जब तुम जानते हो कि तुम पाप कर

रहे हो तो उसे चटपट क्यों नहीं छोड़ देते? पारसाल का आसरा क्यों देखते हो?

एपिक्टीटस (Epictetus)—जब तुम कहते हो कि हम कल से नई चाल चलेंगे तब इसका अभिप्राय यह है कि आज तुम कायर, कुटिल, विषयी, स्वार्थी, बेईमान रहना चाहते हो। सोचो तो तुम कितने पाप कर रहे हो। "अजी कल हम कुछ और हो जायँगे" तो आज ही क्यों नहीं हो जाते?

कन्फूशी (Confucius) ने कहा है 'क्या राजा क्या रङ्क सब का धर्म है कि अपनी उन्नति करे और अपने को सुधारे।'

आलस एक रोग है। इसकी दवा करनी चाहिए।

आलस्य और 'विश्राम' एक नहीं है। विश्राम का अर्थ 'कुछ न करना' नहीं है, काम बदलना है जिससे जो अङ्ग थक गये हैं वे स्वस्थ हो जायँ। विश्राम आवश्यक है। आलस्य बुराइयों की जड़ है।

काम करने से अपना भी भला होता है और दूसरों का भी।

डी टाकविल (De Tocqueville)—"जीवन मे आलस्य का समय कभी नहीं होता। चाहे बुड्ढा हो चाहे जवान, काम में सदा लगा रहना चाहिए। मनुष्य इस संसार में एक यात्री है। वह जितना आगे बढ़ता है उतनी ही ठण्ढक पड़ती है। जल्दी चलने से ठण्ढक कम लगती है। मन को काम में लगाये रहने से और संसार से मिलते-जुलते रहने से सरदी नहीं लगती।

मानटेन (Montaigne)—बुढ़ापा हमारे हृदय पर जितनी झुर्रियाँ डालता है उतनी चेहरे पर नहीं।

एल. बोरडो (L. Bourdeau)—प्रकृति सदा काम में लगी रहती है। वह कभी नहीं रुकती। वह न तो कभी रुकती है और न उसका काम पूरा होता है। हमको भी ऐसा ही होना चाहिए। हम प्रकृति के अंश हैं और हमारे लिए वही नियम है जो प्रकृति के लिए।

अपनी शक्ति से बाहर काम न करो। 'अति' बुरी होती है। उसका फल अच्छा नहीं होता। वही काम करना चाहिए जिससे हमारी शक्ति की उन्नति हो। विचारकर देख लो कि किससे हमारी उन्नति होगी और किससे हमारी शक्ति का नाश होगा। हमारा उद्देश जीवन को छोटा करना नहीं उसे बढ़ाना है।

बहुत हड़बड़ाना अच्छा नहीं। एपिक्टीटस (Epictetus) कहता है, "हर बात में हमको अपनी शक्ति भर काम करना चाहिए। इससे पूरा न पड़े तो धीर गम्भीर रहना उचित है। हमको समुद्रयात्रा करनी है तो हमे क्या करना चाहिए। जहाज़ बड़ी सावधानी से पसन्द कर लो। मल्लाह, सारङ्ग चतुर रख लो। दिन, ऋतु, हवा—जितनी बातें हमारे वश की हैं—सब चुन-चुन कर यात्रा करो। ज्यों ही चले, तूफ़ान आ गया। अब हमारा काम नहीं—अब सारङ्ग का काम है"*

* बीस बरस हुए, हमने उर्दू में एपिक्टीटस के उपदेशों का अनुवाद

थोड़ा सा उत्साह कोई दोष नहीं। हममें कर्म करने की जो प्रवृत्ति है उसका यह धर्म है। इसी से हमारा भलाई करने का अवकाश बढ़ता है।

तुम उदास हो तो काम मे लग जाओ। निरुत्साह हो तो औरों के लिए काम करो। मनुष्य मात्र में तुम्हारा विश्वास घट रहा है तो जितने अच्छे लोग पहले हो गये हैं उनका स्मरण करो। सन्तों के जीवन से बढ़कर और कौन शान्ति दे सकता है? सदा सत्सङ्ग किया करो। ऐसे लोगों से मिलते रहो जैसे पुरानों मे मार्कस औरीलियस, (Marcus Aurelius), एपिक्टीटस (Epictetus), कनफूशी (Confucius) आदि। नये सन्तों को तुम आप चुन लो। उनके लेखों का एक पन्ना नित्य पढ़ो और उसपर विचार करो।

अपने मरे मित्रों को न भूलो। उनके गुणों का ध्यान करो। उनके कामों से अच्छे और उदार कामों के करने की चेष्टा करो।

अपने दुखों पर सदा रोया न करो। तुमको जो शारीरिक या मानसिक पीड़ा हुई है उसको सोचते-सोचते पागल न हो जाओ।

जिस बात से चित्त मे उदासी आये, अपना बल घटे या जो अपने काम मे विघ्न डालै वह बुरा है। इसलिए उदासी

छपाया था। यह वाक्य उससे लिया गया है। अवसर मिलेगा तो उसका हिन्दी-अनुवाद भी छापा जायगा।

को हटाने के लिए कटिबद्ध रहो। सांसारिक घटनाओं के अच्छे पक्ष को देखो, धीर और प्रसन्न रहने का प्रयत्न करो।

रात को नित्य थोड़ी बेर आत्मपरीक्षा किया करो और दिन का कुछ समय मनन, चिन्तन और मानसिक जीवन मे लगा दो।

अपने साथ न्याय का बरताव करो। न तो अपने दोषों का समाधान करो और न उनको बढ़ाकर देखो। अपनी नैतिक दशा का सच्चा अनुमान करो। देखो कि तुम मे कौन-कौन अच्छे गुण नहीं हैं और तुम्हें वे गुण प्राप्त करने चाहिएँ। उन दोषों को देखो जो तुम्हें अपने वश मे किये हुए हैं और जिनसे तुमको छुटकारा पाना चाहिए। इसी के अनुसार प्रयत्न करो और कभी हिम्मत न हारो।

गुयो (Guyau) कहता है—सारे दार्शनिक विचारों मे एक सान्त्वनादेनेवाला गुण है। सम्भव है, यह गुण इन विचारों से उत्पन्न न हो, इन विचारों का विषय दुखा:त्मक हो परन्तु इनसे हमारी विचार-शक्ति बढ़ती है, और हमारा हृदय भी बढ़ता है।

मार्कस औरीलियस (Marcus Aurelius)—जैसे तुम्हारे नित्य के विचार हों वैसा ही तुम्हारा मन भी होगा क्योंकि तुम्हारी आत्मा पर तुम्हारे विचारों की परछाईं पड़ती है।

न कभी नीच काम करो और न कभी झूठ बोलो।

आज इस विचार से नीच काम न करो कि कल तुम कोई बहुत बड़ा या केवल उचित काम करोगे।

किसी प्रकार का नीचपना न करो। अपने मान का सदा विचार रक्खो। मान का अभिप्राय न तो अभिमान है और न गर्व।

याया (Yaya)—जब तुम अपने ही घर में हो तब कोई ऐसा काम न करो जिससे तुम्हें लज्जित होना पड़े। यह न समझो कि तुम पर सूर्य का प्रकाश ही पड़ रहा है।

अपने विचार, आचरण, बात या काम में अशिष्ट न बनो। तुम्हे मतवाले या क्रोधी की बातें दुहरानी पड़ें तो उसकी बोली या उसके हाव का अनुकरण न करो। अनुकरण उसी का करना चाहिए जो सुन्दर हो।

दृढ़ हो परन्तु हठधर्मी नहीं।

समझ एक दैवी शक्ति है परन्तु समझकर कृपा करना उससे भी बढ़कर है। जो तुम चाहते हो कि तुम्हारे चरित में सच्ची उदारता आ जाय तो औरों का भला करो। परन्तु यह भलाई एक विशेष प्रकार की होनी चाहिए। इसमे चतुराई, उत्साह, और सहानुभूति मिली हो; इसमे जाँच, धैर्य, दृढ़ता, उदारता और भलाई की प्रकृति बढ़ाने के गुण हो। तुम्हारी भलाई को निर्बलता का कपटरूप न होना चाहिए; वह इस कारण से न हो कि जाने दो हम झगड़े मे पड़ना नहीं चाहते। ऐसी भलाई से केवल आलस्य और ढीलापन उन लोगों में आता है जिनके साथ की जाती है और वे लोग तुम्हारा आदर नहीं करते। एक बात यह भी न भूलै कि

हित के साथ भलाई करने में कहीं अपरिचित के साथ अन्याय न हो जाय।

मार्कस औरीलियस (Marcus Aurelius)—विना कुछ किये भी अन्याय हो सकता है। केवल काम ही अनुचित नहीं होते।

बुराई न करना हमारे कर्त्तव्य का एक छोटा सा ऋणात्मक चेष्टाहीन अंश है, भलाई करना इसका घनात्मक भाग है।

जब तुम बुरे काम को रोक सकते हो तब उसका न रोकना मानो उसे आप करना है।

कानफूशी (Confucius)–जो सत्कार्य को देखता तो है पर करता नहीं वह कायर है।

मार्कस औरीलियस (Marcus Aurelius)—न्याय सारे सुकृतों की जड़ है।

सेनेका (Seneca)—हमें सिखा दो कि न्याय कैसा पवित्र पदार्थ है जो औरों के अधिकारों की रक्षा करता और किसी दूसरे पुरस्कार की आशा नहीं रखता। हम तो चाहते हैं कि सब की यह इच्छा हो—"मैं स्वार्थ-रहित न्याय करना अपना धर्म समझता हूँ।" इतना ही नहीं, वह यह भी कहे—"मैं प्रसन्न मन से इस सुन्दर सुकृत के पीछे सब कुछ त्यागने को तैयार हूँ और इससे स्वार्थ के विचार को दूर करने के लिए भरपूर प्रयत्न करूँगा। अपने न्याय के काम से लाभ

का विचार छोड़ दो। तुम्हारे सुकृत को कोई जाने या न जाने इसमे तुम्हारी क्या हानि है? जो अपने सुकृतों की घोषणा चाहता है वह यश का भूखा है धर्म का नहीं।

जे. पेयो (J. Payot)—जब हम अच्छा और व्यग्र जीवन जीने का प्रयत्न करते हैं तब हम जानते हैं कि हम न केवल बड़े-बड़े बुद्धिमान और धार्मिकों ही का हाथ बँटा रहे हैं वरन सारे विश्व का।"

हमको चाहिए कि बार-बार समष्टि में मिलने का उद्योग करे। ऐसा करने से हम समझ जायँगे कि हमको किस राह चलना है और कहाँ पहुँचना है। हमारी आत्मा में बड़ी शान्ति आ जायगी और साथ ही साथ विश्व के विशाल उद्योग मे अपनी भी सहायता करने की प्रबल इच्छा बढ़ेगी।

एल. बोर्डो (L. Bourdeau)—ईश्वर मे हमारी भक्ति प्रकट करने की रीति यह है कि जीवन के सारे उद्गमों से पुनीत प्रेम रहे। विश्व को जो सौन्दर्य और चैतन्यता उज्ज्वल किये हुए है उसकी हम प्रशंसा करें, और उसके नियमों में जो बुद्धिमानी झलक रही है उसके गौरव का अनुभव करें। अपना जीवन उसके अनुकूल बनाने मे हम विश्वजीवन में अपना अंश पाते, उसके काम में सहायक होते और, जितनी हममें समाई है, उसकी महिमा के भागी होते हैं।

सौन्दर्य को, किसी रूप में हो, प्यार करना चाहिए। सुन्दर चित्र, रमणीय मूर्ति, सोहावना प्रदेश, समुज्ज्वल सूर्यास्त,

खिला फूल देखने, मनोहर गाना सुनने और सबसे बढ़कर अच्छा काम करने का अवसर न चूको।

प्रकृति की शोभा को प्रसन्न मन से देखने मे कभी न उकताओ। वह सदा सोहावनी रहती है।

आँधी चल रही है, काले बादल आकाश में भागे जा रहे हैं। बिजली की चमक आँखों मे चकाचौंध डालती, आसमान को फाड़े डालती है और बादल की गरज पहाड़ों मे गूँज रही है। सागर की तरङ्गें क्रोध मे पागल की भाँति पहाड़ी पर अपना सिर पटक रही हैं और अपने उद्योग से थककर मानो मुँह में फेना भरे हुए गुर्राकर पीछे गिर पड़ती हैं। वन मे हवा के झोके कहीं धूम मचा रहे हैं, कहीं कुत्तों की भाँति भौंकते, कहीं रोते, कहीं सीटी सी बजाते हैं और दानव ऐसे पेड़ों की डालियाँ झुक-झुककर धरती तक पहुँच जाती हैं। एक-एक टहनी पर मोती की भाँति जल-बुन्द चमक रहे हैं। इसके पीछे इन्द्र-धनुष निकला और सब शान्त हो गया। आकाश स्वच्छ हुआ और अपने शान्त रङ्ग पर आ गया। समुद्र मन्द होकर तट पर धीरे-धीरे फैल गया और फिर हटने लगा—यही सङ्गीत में ताल की भाँति निरन्तर हो रहा है और पत्थरों की रगड़ की ध्वनि सदा उसके साथ रहती है।

अब चलो पहाड़ पर चढ़ चलें या इस छोटी पहड़िया के ऊपर चले जायँ। कैसा सुन्दर समा है, और पद-पद पर मन हरनेवाले दृश्य निकलते आते हैं।

सारी ऋतुएँ सुहावनी होती हैं।

वसन्त मे वन-बीहड़ सब हरे-भरे हैं और चिड़ियाँ गा-गाकर नये-नये फूलों का स्वागत कर रही हैं।

गरमी में रङ्ग-रङ्ग के फूल चारों ओर अपनी सुगन्ध फैला रहे हैं। वनों को देवदार धूप से सुवासित कर रहा है, हवा धीरे-धीरे चल रही है। रेशमी और मख़मली पर फैलाये रङ्ग-विरङ्ग की तितलियाँ उड़ रही हैं और आकाश में रात को तारे जगमगा रहे हैं।

शरद में पेड़-पौधे पत्तियों से ढके हुए मानों सज-धजकर मरने को तैयार बैठे हैं।* वनों में पेड़ों के नीचे डूबते सूर्य की किरणें सुरलोक की झाँकी सी बना रही हैं।

जाड़े में डालियों पर पाला जमकर भाँति-भाँति की फूल-पत्ती बनाये हुए है। धरती पर तुषार की नरम चाँदनी बिछी है और कुहरा दूर के पेड़ पत्तियों का रूप बिगाड़ रहा है।

प्रत्येक ऋतु मे या तो सिर पर नीला आकाश है या सफ़ेद-काले-भूरे बादलों का चँदवा तना हुआ है। कहीं आकाश मे बादल लम्बी-लम्बी पटरियों में फैले हुए हैं, पहाड़ों पर ऊन की भाँति बरफ़ बिछी है या दरारों में सूर्य की सुनहली किरणें घुसी जा रही हैं।

सदा देखोगे कि सूर्य निकलता है और अस्त होता है।

---

* यह यूरप की शरद का वर्णन है। वहाँ शरद के पीछे जाड़े मे ठण्ढक से पत्तियाँ गिर जाती हैं।

ऐसे विचित्र रङ्ग वदला करते हैं जो इस धरती पर देखने में नहीं आते।

प्रकृति में सर्वत्र हम देख रहे हैं कि सौन्दर्य निरन्तर प्रकट हो रहा है। कभी ऐसा जान पड़ता है कि किसी वड़े वुद्धिमान् की वुद्धि का चमत्कार है और कभी लीला है। मोर के पर को देखो। शरीर का लोहू, जो प्रत्येक पर की नसों तक पहुँचता है वही है जो उसके सारे शरीर मे दौड़ रहा है, परन्तु उसका प्रत्येक अङ्ग एक विशेष रङ्ग को चुन लेता है और उसे ऐसा सजाता है कि रचना के अनुकूल हो जाय। इस रङ्ग को प्रत्येक नस में भिन्न-भिन्न रीति से पहुँचाके ऐसा प्रवन्ध किया गया है जिससे मोरपंख की चन्द्रिका वन जाय जिसका रङ्ग कैसा सुन्दर और जिसकी वनावट कैसी सुघर है।

अनेक प्रकार के कीड़ों, ततैयों, चिड़ियों तथा मछलियों के शरीर पर भी चमकीले रङ्ग और वेल-वूटे सजे रहते हैं। सीप को देखो और तितली के परों को देखो।

प्रकृति से वढ़कर कारीगर कौन होगा जो सदा अपनी रुचि से करोड़ों सुन्दर वस्तु वनाती रहती है? अपनी आँखें खोलो और उसकी प्रशंसा करो।

योग्य काम करने में लज्जा न करो। जो तुम्हारे हित कहलाते हैं उनकी हँसी इसमें वाधा न डालने दो। जो तुम दूसरों की भलाई करना और उनकी सहायता करना चाहते

हो तो मनसा-वाचा-कर्मणा उसमें में लग जाओ, नहीं तो परि-णाम कुछ न होगा।

रूसो (Rouseau)—तुम बड़ी उदारता से अपनी थैली का मुँह खोल दो परन्तु जब तक अपने हृदय को न खोलोगे, दूसरों के हृदय के कपाट तुम्हारी ओर बन्द ही रहेंगे। तुम्हें अपना समय देना चाहिए; अपना मनोयोग, अपना प्रेम और अपने आपको दूसरे के आगे रख देना चाहिए। तुम जो चाहो सो करो, लोग यही समझते रहेगे कि तुम अपना धन दिखा रहे हो, मन नहीं।

जूसू (Tzu Sou)—जिस मनुष्य मे पूरी सरलता है वह अपनी ही उन्नति करके चुप नहीं रह जाता। वह तो अपने गुणों को दूसरों की उन्नति मे लगा देता है। अपने को सिद्ध बनाना भलाई है, औरों को सिद्ध बनाने मे ज्ञान और चतुराई है। हमारा पहला धर्म यह है कि औरों को अपनी नियति पूरी करने में सहायता दें जिससे उनकी समुचित उन्नति हो जाय।

साइमन (Simon)—जब हमको यह विश्वास हो जाय कि हममे सत्य का कोई अंश है तो हमारा धर्म है कि उसके प्रचार का उद्योग करें, उसकी सेवा में लग जायँ और स्वार्थ

या अभिमान का विचार छोड़ दें और विना सङ्कोच के--विना कभी पीठ फेरे हुए--अपने ही कामों से अपने मन का आदर करें और जो काम हमने उठाया है उसमें तन-मन से लग जायँ, सदा उसको स्थापन करने मे दृढ़ रहें और उसके लिए अपने प्राण दे दें।

अव प्रश्न यह है कि औरों को अपने मत में लाने के लिए तुम्हारा कर्तव्य क्या है? कर्तव्य यह है कि उनमें सत्य मार्ग पर चलने, न्याय और काम करने का उत्साह वढ़ाओ और समझा-कर दया करना सिखा दो। संसार का हित करने के जोश में यह न समझो कि जव तुम्हारे दोष उनके सामने प्रकट हैं तव तुम उनको सिद्ध वना सकते हो। पहले अपनी धार्मिक उन्नति में लग जाओ क्योंकि एक जीता-जागता आदर्श बड़े लम्बे-चौड़े व्याख्यानों की अपेक्षा मनुष्य के चित्त को फेरने की अधिक शक्ति रखता है।

तुम आप उग्र और साहसिक हो तो दूसरे को कोमल और सरल होने का कैसे उपदेश देते हो? क्रोध और अधी-रता को दूर करो।

वाद-विवाद मे कही गई कोई वात जो तुम्हे बुरी लगे तो तुम्हारा कितना ही जी चाहे, चुप वैठे रहो। तुमको जो ऐसी चिट्ठी मिले जिसे पढ़कर क्रोध आ जाय तो उसका उत्तर तुरन्त न

दो। क्रोध से सावधान रहो। क्रोध और पागलपन मे थोड़ा ही अन्तर है।

बुलाक पपिरस (Boulaq Papyrus)—किसी की बुराई करने से भलाई नहीं हो सकती। जो तुम कोई मूर्खता का काम करना चाहते हो तो अपनी बुरी वासना के फेर मे पड़ो।

पत्थर को गाली देने से तुमको क्या मिलेगा? पत्थर तो सुनता ही नहीं। तुम पत्थर का अनुकरण करो और किसी की गाली न सुनो।

बुलाक पपिरस (Boulaq Papyrus)—क्रोधी से धीरे बोलो। उसको शान्त करने का इससे बढ़कर उपाय नहीं है।

एम. गुयो (M. Guyau)—जो उग्रता को राह देता है वह अपने स्वभाव के दो बड़े गुणों—बुद्धि और सहानुभूति—का विनाश कर रहा है। यही गुण उसके सबसे उत्तम और पेचीले हैं। औरों के साथ पाशविक व्यवहार करने से करने-वाला भी कुछ न कुछ पशु ही हो जाता है। उग्रता देखने में तो बल की विजय समझी जाती है परन्तु अन्त को उसका परिणाम हृदय की सङ्कीर्णता है।

धार्मिक बनो परन्तु देखाव न करो। बार-बार उपदेश करने से अच्छा यह है कि अच्छे आदर्श बनो। बातें कम करो, जीवन भर के आदर्श होने का भरोसा करो।

मेनशियस(Mencius)—हमने कभी नहीं सुना कि कुटिल मनुष्य ने दूसरों को सीधा-सच्चा बना दिया हो।

कनफूशी (Confucius)—अपने वचनों को अपने कर्मों के अनुकूल और अपने कर्मों को अपने वचनों के अनुकूल बनाओ; औरों का सदा ध्यान रक्खो और अपना बहुत कम।

तुमको यह डर हो कि हमारे प्रयत्न अकारथ जाते हैं तो दूना उद्योग करो।

तुम कहते हो कि हमारे पास इस कङ्गाल को देने के लिए कुछ नहीं है। यह तुम्हारी भूल है। तुम उसे दिलासे की एक बात कह दो। इतना भी नहीं कर सकते तो भाई की भाँति मुसका दो।

सबसे प्रेम करो क्योंकि सब मनुष्य वही हैं जो तुम हो—इस समष्टि के अंश।

अपनी सहानुभूति के मण्डल का प्रसार बढ़ा दो। पौधे, फूल, झील, समुद्र, पशु, बादल, तारे, पहाड़, घाटी, सूर्यास्त, मनुष्य-मात्र विशेष करके दीन-दुखिया, सबको प्यार करो।

एम. गुयो (M. Guyau)—भविष्य के समाज मे सबसे वढ़कर मैत्री के बढ़ाने और फैलाने की आवश्यकता होगी।

जो दुखी है उसका कभी-कभी विचार किया करो।

बुलाक पपिरस (Boulaq Papyrus)—दूसरा खड़ा हो तो उसके लिए रोटी मँगाने को हाथ बढ़ाये बिना, तुम आप न खाओ।

भले कामों का सपना ही न देखा करो, किया भी करो।

केवल विचार करने ही के अभिप्राय से विचार करना

व्यर्थ है; काम करने के लिए विचार करो। मन और कर्म को साथ-साथ चलना चाहिए।

विचार को काम की प्रस्तावना मात्र होना चाहिए।

राँडेले (Rondelet)—आत्मा का एकान्तवास बुरा है, इससे स्वार्थ और अभिमान की भावना उत्पन्न होने का डर है।

औरों के हित मे लगा रहना प्रशसनीय है। आदर्श के ध्यान मे लगा रहना उत्तम है।

तुम समझते हो कि बच्चों की समझ कच्ची है और वे अपनी हानि करके दूसरों का हित करना नहीं समझते—यह तुम्हारी भूल है। बच्चे तो उत्तम से उत्तम गुणों और उदार भावों को स्वभाव ही से समझते हैं।

मित्र के साथ कृपा का वर्त्ताव करो और वैरियों के साथ अनुग्रह का।

जिन लोगों ने तुम्हारा अपकार किया है उनके साथ कठोरता का व्यवहार न करो; तुम नहीं जानते कि उन्होंने कै बार पाप की प्रवृत्ति को रोका है, तुम नहीं जानते कि उनके इस अधःपतन से पहले उनको अपनी प्रवृत्ति से लड़ना पड़ा है? यह हो सकता है कि इस अधःपतन पर भी वे तुमसे अच्छे हैं; तुमको बिगड़ने के लिए लुभानेवाला अवसर ही नहीं मिला।

अपने साथ कठोर रहो, औरों के साथ नहीं। सम्भव है, तुम्हें देख कर वे भी अपने साथ कठोरता करने लगें।

असभ्य बातें मुँह से न निकालो।

तिरस्कार-भरे वचनों का प्रयोग न करो। अपने भाई की अवज्ञा करने का तुमको क्या अधिकार है? बातों से, दृष्टि से या इङ्गित से किसी का सिर नीचा न करो।

बुलाक पपिरस (Boulaq Papyrus)—वचनों में पाप से सावधान रहो। तुम्हारे वचनों मे विष का डङ्क न होना चाहिए।

कभी न कहो कि यह चोर है। जो बिना कहे न बने तो कहो "इसने चोरी की।" दोनों का अन्तर समझे?

मार्कस औरीलियस (Marcus Aurelius)—औरों की बातें ध्यान से सुनने की बान डालो और बोलनेवाले के चित्त का भाव समझने का उद्योग करो।

ए. क्लेरमा (A. Clermont)—कोई आकर तुमसे अपने दुखों की कहानी कहे तो मित्रभाव से ध्यान देकर उसकी बातें सुनो और अपना ध्यान न करो; न अपना समय नष्ट करो न उसका। सोच-समझकर उसे अच्छे से अच्छा उपदेश दो, और न तो उसको अपने दुखों का ब्यौरा सुनाओ और न यह कहो कि हमने तुमसे बढ़-बढ़कर दुख झेले हैं क्योंकि तुम्हारी ही आँखों से तुम्हारे दुख उसके दुखों से बढ़कर देख पड़ेंगे।

सेनका (Seneca)—हमारा यह उपदेश है कि अपने बीते हुए दुखों का सोच न करो। हम यह नहीं सुनना

चाहते कि "हमसे बढ़कर दुखी कौन है? हमने बड़ो-बड़ी यातनाएँ सही हैं और बहुत-से कष्ट झेले हैं।" यह सब सच है तोभी बीती हुई बात है और पुराने घावों को खोदने से क्या लाभ है? इससे दुबारा कष्ट ही होता है। हमें आश्चर्य है कि मनुष्य मे अपना कष्ट बढ़ाकर समझने का रोग है। हम लोग राई भर दुख को पहाड़ समझते हैं और अपने को धोखा देते हैं। हमको यह न करना चाहिए। पुराने दुखों को याद करके शोक करना मूर्खता है। आनेवाले दुखों के लिए भी पहले ही से चिन्ता न करनी चाहिए।

संसार में वही सुखी है जो अपने को इस समष्टि का अंश समझता है और अपने को विश्व का एक कणमात्र मानता है।

सेंग ज़ू (Tseng Tzu)—जो बातें तुम्हे अपने बड़ों मे बुरी दिखाई देती हैं वही तुम अपने से छोटों के साथ न करो और जिनको अपने से छोटों मे दोष समझते हो उन्हें तुम अपने से बड़ों के साथ न करो। जो बुराई तुम अपने से बड़े लोगों में देखते हो वह तुम अपने से पीछेवालों के साथ न करो और जो तुम अपने से पीछेवालों मे बुरा समझते हो वह अपने से आगेवालों के साथ न करो। जो बर्ताव

तुम अपने साथ नहीं चाहते वह दूसरों के साथ नं करो। यही धर्म की नीति है।

अपने देश के प्रति तुम्हेँ अपना धर्म निवाहना चाहिए।

यदि तुम्हेँ वोट (Vote) देने का अधिकार है तो तुम्हें योग्य मनुष्य को वोट अवश्य देना चाहिए। ऐसा न करना पाप है। बीमारी के अतिरिक्त और कोई कारण ऐसा नहीं जिससे तुम अपना वोट न दो।

आवश्यकता पड़ने पर तुम्हें अपने नगर और देश के प्रबन्ध मे लगना चाहिए।

किसी भले काम में लग जाओ। और कुछ नहीं तो रुपये-पैसे की मदद अवश्य करो।

डा० फ़ोरेल (Dr Forel)—केवल रुपया कमाने ही के लिए काम करना बुरा है, तुम्हें कुछ परोपकार भी करना चाहिए। ऐसा न करने से तुम्हारा जीवनकार्य पूरा नहीं होता। यह आवश्यक नहीं कि तुम्हारे परोपकार को सब कोई देखे।

शील क्या है? छोटी-छोटी बातों में दया करना ही शील है।

पत्र का उत्तर तुरन्त देना चाहिए। बातचीत में तुम तुरन्त जवाब देते हो। लिखकर बातचीत करने में भी ऐसा ही किया करो।

वाद-विवाद में हठ मत करो। केवल अपने प्रमाण दे दो। दूसरे से उसकी हार स्वीकार कराने की चेष्टा न करो। यदि तुम उसे नीचा न दिखाओगे तो भी तुम्हारी बातों का उस पर असर होगा।

खेल में न तो तुम दूसरे को हराने की ही चेष्टा करो और न अपनी चतुराई ही दिखाओ। उदार बनो। शङ्का की बात मे दूसरे ही को लाभ होने दो। हारने पर यह न कहो कि 'उसने बेईमानी से बाज़ी जीती'; साफ़ कह दो कि वह तुमसे अच्छा खेलता है।

सबमें भलाई देखने का प्रयत्न करो, बुराई निकालने की चेष्टा न करो।

केवल बड़ी बातों मे ही उदार न हो, छोटी-मोटी बातों मे भी उदार बनो। बड़ी बातों मे दया दिखाने का समय कम आता है, तुमको सदा दयालु होना चाहिए। छोटी ही बातों मे दया और उदारता देखी जाती है। उदाहरण के लिए

यदि तुम रात को देर से घर लौटो तो किवाड़ बहुत ज़ोर से न बन्द करो। तुम्हारे पड़ोसी सोते होंगे, और नाना प्रकार के शब्द करके उन्हे जगाने का तुमको कोई अधिकार नहीं। ऐसे समय खट-खट करते हुए न चलो। जूता उतारकर धरती पर न पटको और रात में नींद न आवे तो गाओ-बजाओ मत। तुमको नींद नहीं आती तो इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम्हारे पड़ोसी भी न सोवें। सोने के समय के पीछे तुम्हें किसी प्रकार का शोर न मचाना चाहिए।

तुमको संसार छोड़ने के पहले कुछ कर डालना चाहिए। यह न कहो कि ऐसी तुम्हारी हैसियत न थी कि तुम कोई बड़ा काम कर सकते। और कुछ नहीं तो तुम अपने आदर्श से बहुतों को अच्छे मार्ग पर ला सकते हो। तुम्हारी नम्रता और साधुता का असर सब पर पड़ सकता है। तुम्हारे लिए इतना ही बहुत है।

कोई काम करना चाहिए या न करना चाहिए, इसमे तुमको सन्देह हो तो अपने अन्त:करण से यह पूछो कि इसके करने पर हम कल प्रसन्न होंगे या नहीं।

मान लो कि तुम बीमार हो। तुमको यह करना चाहिए कि धीरज धरो, शान्त रहो। जो तुम्हारी रोगि-चर्या कर रहे

हैं उनके कृतज्ञ रहो। वैद्य की आज्ञा पूरी-पूरी मानो और जो तुम्हारे पास रहें या आयें उनसे शील और दया का बर्ताव करो और जब पीड़ा घटे तो शान्त भाव से ध्यान करने का अवसर न चूको।

कनफूशी (Confucius)—धर्माचरण मे पाँच बातों का सर्वत्र और सदा व्यवहार होना चाहिए—

(१) रख-रखाव,

(२) उदारता,

(३) अन्तःकरण की शुद्धता,

(४) काम मे जी लगाना, और

(५) हितैषिता

मारकस औरीलियस (Marcus Aurelius)—शुद्ध अन्तःकरण हो तो हितैषिता अजेय है। तुम किसी दुष्ट के साथ सदा सौजन्य का बर्ताव करो तो वह तुम्हारा क्या बिगाड़ सकता है ? अवसर पाने पर तुम उससे शान्तभाव से बातचीत करो और जब वह तुम्हारी हानि करना चाहता है तब उससे क्रोध छोड़कर यों कहो—'भाई, तुम इस जीवन का उद्देश भूले हुए हो, तुम्हारे इस काम से अकेले हमारी हानि न होगी; इसमे तुम्हारी हानि भी हो जायगी।' तुम उसको समझाकर यह बताने का उद्योग करो कि यह प्रकृति

का नियम है और मधुमक्खी आदि जितने जीव समाज बना-कर रहते हैं, ऐसा काम नहीं करते। इसको चिढ़ाओ मत परन्तु यह दिखलाओ कि तुम्हारे अन्तःकरण मे सच्ची दया और शील हैं जो तुमसे ऐसी बातें कहला रहे हैं और तुम्हारा अन्तःकरण क्रोध से दूषित नहीं हो सकता। न दम्भी बनो और न अपने साथियों की प्रशसा के भूखे रहो परन्तु और लोगों के साथ रहने पर भी इसी का ध्यान रक्खो।

एम. गुयो (M. Guyau)—कामकाजी लोग अपने ऊपर करुणा करके अपना समय नहीं बिताते। आजकल के मन के दुखों की सबसे बड़ी औषधि यही है कि मैत्री और सहानु-भूति बढ़ती रहे।

एम. गुयो (M. Guyau)—दुखों की सच्ची औषधि अपने मन का उद्योग बढ़ाना है क्योंकि काम मानसिक पीड़ा को बहुत कम कर देता है। ऐसे ही मैत्री और दया से अपना दुख कम हो जाता है क्योंकि ऐसे दुख में थोड़ा-बहुत स्वार्थ मिला रहता है। अपनी सान्त्वना का इससे बढ़कर कोई उपाय नहीं कि औरों की सान्त्वना की जाय।

हँसी में भी झूठ न बोलो और बच्चों के सामने तो कभी झूठ बोलना ही न चाहिए—झूठ, जानबूझकर हो या न हो,

अन्य सारे दोषों की भाँति एक दोष ही है और उससे और दोष उत्पन्न होते हैं। स्मरण रक्खो कि शारीरिक, मानसिक, नैतिक गुण और दोष माता-पिता से सन्तान को मिलते हैं। बच्चों को सोचने-समझने की रीति भी कुछ रोगों की भाँति ऐसे ही मिलती है। बच्चा झूठा, आलसी, क्रोधी और धोखादेनेवाला हो या उसको कोई रोग बार-बार हो जाता हो तो जान लेना चाहिए कि ये दोष उसको बाप-दादों से मिले हैं। जवानों को विवाह करने में बड़ी सावधानी करनी चाहिए—पुरुष को स्त्री वरने में और स्त्री को पुरुष वरने में।

ए. मार्टीन (A. Martin)— कुटुम्ब के विषय मे हम यह कह सकते हैं कि माता-पिता का दोष जो सन्तान को जन्म से मिलता है वह उनका दृष्टान्त देखकर और पक्का हो जाता है। पहले तो उनके रुधिर मे विकार आता ही है, पीछे उनकी चाल देखकर लड़का उन्हीं का अनुकरण करता है। इसी कारण किसी-किसी कुल में बच्चों की शिक्षा की अनुचित दशा देखकर हृदय को चोट सी लगती है। माता-पिता उन दोषों को भला कैसे छुड़ा सकते हैं जो उन्होंने बच्चों को पैतृक सम्पत्ति की भाँति जन्म ही से दिये हैं और जिन दोषों को वह कभी-कभी बेजाने हुए अपने बच्चों के आगे आप करते हैं। जिस कुल में नीच और संकीर्ण-भाव व्याप रहे हैं, जहाँ लोभ और अधमता ने अपना रङ्ग जमा रक्खा है वहाँ उदार और सुशील गुणों का

पौधा कैसे पनप सकता है? जो लड़के भोग-विलास और टीम-टाम की हवा में पले हैं वे सीधे-सादे परिश्रमी और विनीत कैसे हो सकते हैं? नीति-शिक्षा का सबसे प्रबल साधन यही है कि स्वभाव और आदर्श दोनों का प्रभाव रहे। माता-पिता! तुम्हारे बच्चे जिस सङ्गति मे उठते-बैठते हैं उसको बड़ी सावधानी से देखा करो। बच्चे का कोई साथी हो, जिससे वह प्रेम रखता है और जिसको वह अच्छा समझता है, तो वह उसी का अनुकरण करेगा,—माँ-बाप और गुरु का नहीं। बहुत सावधान रहो।

निकोल (Nicole)—जो कुछ हम पढ़ते हैं वह हमारे मन के खेत मे बीज की भाँति पड़ता है, भाव और इच्छा के रूप मे उसका अँकुआ निकलता है। जो हम देखते-सुनते हैं उससे भी यही होता है। इसी से माता-पिता को सावधान रहना चाहिए।

बच्चों को धर्म-नीति के पाठ रटाने के बदले उनको अच्छी चाल सिखाओ। इस बात की बान डालो कि जो कुछ करे उसको पूरा-पूरा करें, साफ़-सुथरे रहें, सच से प्रेम रक्खें, अपना मान रक्खे, औरों का भी मान रक्खे, कृतज्ञ रहें, तेजस्वी हों, उत्साही हों, मिलकर काम करना जानें और विनीत रहे। अपने अनु-भव की कहानियाँ सुना-सुनाकर उन्हे निर्बलों का आदर करना

सिखाओ; अपनी जन्म-भूमि, अपने देश और जिस संसार में उनका जन्म हुआ है उससे प्रेम करना सिखाओ। प्रकृति से प्रेम करने और उसकी महिमा भरपूर समझने के लिए काव्य और विज्ञान से काम लो। उनके अन्तःकरण में इस समष्टि के लिए परम प्रेम उत्पन्न कराओ; उनके मन में धार्मिक प्रवृत्तियों के अंकुर जमाओ क्योंकि प्रवृत्तियों ही से मनुष्य का चाल-चलन बनता-बिगड़ता है।

बच्चे से यह न कहो, 'तुम यह काम करो, तुमको इनाम मिलेगा।' 'अच्छे लड़के बनो तुम्हें मिठाई देंगे।' वरन बचपन से ही उससे कहो 'काम करो और अच्छे बनो, क्योंकि यही उचित है; यही विश्व की नीति के अनुकूल है और यही तुम्हारा धर्म है।' लड़के को यह समझाने में सङ्कोच न करो कि तुम समष्टि के एक नन्हे से अंश हो और तुमको उसी राह चलना चाहिए जिस राह विश्व चल रहा है।

गीज़ो (Guizot)—जो तुम अपने बच्चे की इच्छा-शक्ति को बिना सुख का लोभ दिये प्रवृत्त नहीं कर सकते तो वह सुख ही को जीवन भर अपना पथदर्शक समझेगा और अपने सारे उद्योग का प्रयोजन मानेगा। अपना धर्म निबहना इसी अभिप्राय से रहेगा। यह एक गौण प्रयोजन है और उसके मन की धार्मिक उन्नति न होगी।

तुम भले ही सिद्ध होने के लिए निरन्तर उद्योग करते रहो, निरन्तर औरों के लिए अपना तन मन धन अर्पण करने को

तैयार रहो, और तुम जीवन भर अपने पड़ोसियों के साथ भलाई करने मे उद्यत रहो। जो तुमने ये सारे काम इस लोक मे या परलोक मे किसी पुरस्कार पाने की आशा से किये तो न तो तुम ने कोई धार्मिक काम किये और न तुम आदर के योग्य ही हुए। तुम केवल व्यापारी हो, जैसे कहावत है, मछली पकड़ने के लिए तुमने केचुआ फँसाया। तुम अपने को अच्छे कामों के दूकानदार भले ही कह लो परन्तु तुम धर्मात्मा नहीं हो सकते। अपना धर्म इसी लिए करो कि तुम्हारा धर्म है। इससे बढ़-कर उत्तम प्रयोजन नहीं हो सकता। जो कुछ करो, यह समझ कर करो कि यह नीति है, इसे करना चाहिए। पुरस्कार को ध्यान में न लाओ और न इसकी आकांक्षा करो। भला काम स्वार्थ के विचार को छोड़कर करना चाहिए।

भलाई के बदले पुरस्कार पाने का विचार बड़ा नीच है। लोगों को समझा दो कि धर्म्माचरण में उत्तमता है, इसी के करने में बड़ाई है और सब लोग करने लगेंगे, क्योंकि मनुष्य का हृदय उदार होता है, चाहे लोग उसे ऐसा न समझें। लोगों में अपने गौरव और रख-रखाव के भाव उत्पन्न कराओ, और वे भले काम, पुरस्कार की आशा या दण्ड के भय को छोड़कर, करेंगे। वे पुरस्कार की आशा और दण्ड के डर को तुच्छ समझेंगे।

एल. बोर्डो (L. Bourdeau)—धर्म जब लाभ की आशा से किया जाता है तो दूकानदारी हो जाती है। इसी लिए लोक

या परलोक मे कुछ मिलने की आशा से भलाई करना ऐसा ही है जैसे व्यापार मे रुपया लगाना। सच्चा धर्म स्वार्थ-रहित होता है और उसका उद्देश इतना ही है कि धर्म करने से आत्मा को सन्तोप हुआ।

सेनेका (Seneca)—भलाई का पुरस्कार उसका करना ही है।

कैण्ट(Kant)—मनुष्य जब अपने धर्म को धर्म ही के विचार से करता है तभी सिद्ध हो जाता है।

गुयो (Guyau)—नैतिक विचार का सब से शुद्ध रूप धर्म को धर्म ही जानकर करना है। भले काम का सच्चा पुरस्कार यही है कि मनुष्य और भी अच्छा हो जाता है।

मार्कस औरीलियस (Marcus Aurelius)—कुछ ऐसे लोग हैं जो तुम पर अनुग्रह का कोई काम करते हैं तो उसे अपने हिसाब में तुम्हारे नाम झटपट लिख लेते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जिनके ऐसी हड़बड़ी नहीं होती परन्तु जो कुछ किया है उसे स्मरण रखते और तुमको अपना ऋणी समझते हैं। कुछ लोग उसे भूल जाते हैं। ऐसे लोग अंगूर की बेल हैं; अंगूर फलै इसी का सन्तोष है, इसके बदले और कुछ नहीं चाहते। वे कोठों चढ़कर अपने करतब का डङ्का नहीं पीटते जैसे जिस घोड़े ने घुड़दौड़ जीती या जिस शिकारी कुत्ते ने शिकार मारकर गिरा दिया या जिस मधुमक्खी ने मधु बनाया, अपना काम करके डींग नहीं मारते। वे दूसरा उदार काम करने मे लग जाते

हैं जैसे अंगूर की वेल दूसरी ऋतु में फिर फलने की तैयारी करती है।

जव तुमने कोई भला काम किया और दूसरे का उपकार हुआ तो दो बातें हो चुकीं, अब तीसरी के लिए क्यों घबरा रहे हो कि तुम्हारा अच्छा काम सब लोग देखें या कोई तुम्हारा कृतज्ञ हो?

जब तुम किसी बच्चे को शिक्षा देते हो तब तुम्हारा क्या उद्देश रहता है? तुम चाहते हो कि उसके सब गुण बाजो मे संगत की भाँति मिलकर बढ़ें, उसकी काम करने की शक्ति उन्नत हो और वच्चा एक भलामानस वन जाय। यही ठीक तुमको अपने लिए भी करना चाहिए, चाहे तुम कितने ही बड़े क्यों न हो गये हो, क्योंकि इस विषय में तुम निरे वच्चे ही हो। कभी-कभी तुम्हारे मन में यह प्रबल इच्छा उठती है कि हम धार्मिक पुरुष हो जायँ। तो इस धार्मिक तरङ्ग को मत रोको, तुरन्त काम में लग जाओ।

कानफूशी (Confucius)—उत्तम प्रकार के लोग सब से सहानुभूति रखते हैं और पक्षपात-रहित होते हैं। नीच लोग पक्षपाती और सहानुभूति-हीन होते हैं।

फ़लातून (Plato)—किसी को दुख न दो, यहाँ तक कि बुरे को भी नहीं।

उत्साह और दिलासा देने में न चूको—अच्छे लोगों को इसकी आवश्यकता है। इससे वे अपने काम मे लगे रहते

हैं। कुछ और लोगों को इसकी विशेष रूप से आवश्यकता है जिससे अपनी चाल बदल दें।

जो भला काम तुमने किया है उसके लिए डींग न मारो। कोई अनोखी बात नहीं है।

इपेक्टिटस (Epictetus)—तुम अन्धों और लँगड़ों पर तरस खाते हो। तुम दुष्टों पर क्यों नहीं तरस खाते? जैसे अन्धे लँगड़े होने में उनका वश न था वैसे ही दुष्टता में उनका दोष क्या है?

मार्कस औरीलियस (Marcus Aurelius)—सबसे अच्छा बदला यह है कि तुम भी दुष्ट न हो जाओ। नित्य सवेरे सोकर उठने पर उनका कुछ ध्यान करो जो सत्य की खोज में हैं और जो धर्म करना चाहते हैं। सत्य और धर्म में अपने प्रेम से उनसे मिल जाओ और दिन-दिन अपनी धार्मिक उन्नति करने की तुमको इच्छा है तो उनका अनुकरण करो। पशु-पक्षियों पर दया करो। जान-बूझकर उनको दुःख न दो। उनको मारना अत्यन्त ही अनिवार्य हो तो उन्हें निठुराई से न मारो। सब जीव उसी समष्टि के अंश हैं। ऐसे जाल न बिछाओ जिनसे जीवों को देर तक पीड़ा होती है। कभी शिकार खेलने न जाओ। कभी-कभी जीव घायल होकर झाड़ी में घुस जाते हैं और कई दिन यातना भोगकर मरते हैं। खुले मैदान में खेलने के खेल बहुत हैं जो शिकार के बदले किये जा सकते हैं। इससे एक लाभ तो यह होगा

कि तुमको बिना किसी को दुःख दिये ही विनोद मिल जायगा। तुम्हारे विनोद मे किसी को पीड़ा न होनी चाहिए। जिस काम मे तुमको सुख मिले उससे किसी मनुष्य या जीव-जन्तु को कष्ट न होना चाहिए। अपना जी बहलाने के लिए किसी को मारना या सताना पाशविक व्यापार है और मनुष्य का अधःपतन करता है।

व्यर्थ किसी को दुःख न दो। जितनी कम हो सके उतनी कम हिंसा करो। क्या समष्टि को आदर करने का इससे बढ़कर और कोई उपाय है ?

रेजी मिचो (Regi Michaud)—जीवन के साथ प्रेम करना अन्त को सर्वोपरि रहेगा। इसको हम सबके मन में गड़ जाना चाहिए। इसी मे कल्याण है। हम लोगों मे बिरला कोई होगा जो मौत से न डरता हो परन्तु ऐसे बिरले ही होंगे जो जीवन के सच्चे प्रेमी हैं। जीवन के प्रेम का यह अभिप्राय नहीं है कि सूम की भाँति इसे छाती से लगाये रहो—इसका उलटा होना चाहिए। उज्वल-उदार परमार्थी जीव–जिनके बिना संसार का काम नहीं चल सकता–सबसे पहले मरने को तैयार रहते हैं। ऐसे जीव जीवन को जीवन समझकर और उसका उत्तम उपयोग जानकर जीवन को प्यार करते हैं। जो अपने बच्चे को बचाने के लिए अपनी जान दे देता है वह जीवन का प्रेमी है क्योंकि बच्चे ही के द्वारा वह जीता रहता है। जो अपनी जाति की बड़ाई के

लिए अपने प्राण देता है वह जीवन का प्रेमी है क्योंकि जाति ही मे उसका जीवन बना रहता है। अपनी चेतना शक्ति से, अपने सौजन्य के बल से, जो इन दोनों को नष्ट करने में प्रवृत्त और धोखा देनेवाली इन्द्रियों को जीत लेता है वह जीवन का प्रेमी है। जो रोग और भयानक वासनाओं और बुरे प्रलोभनों को अपनी प्रबल इच्छा-शक्ति से दबाता है वह जीवन का प्रेमी है। जो स्थायित्व के आगे हलचल के निरर्थक और प्राणघातक प्रलोभन के फन्दे में नहीं पड़ता उसे जीवन का प्रेम है। जिसको समष्टि के जीवन का एक अंश होने का अभिमान है, जो क्षणभङ्गुर सुखों, अनुचित विचारों, अपना गौरव नष्ट करनेवाली मानसिक तरङ्गों से दूर रहता है, जो भविष्य पर अपना उचित अधिकार मानकर उसको दृढ़ता से परखा करता है, जो अपने वैरी से कायरता से दबकर अपने अधिकार नही खोता उसे जीवन का प्रेमी कहते हैं।

एल. बोर्डो (L Bourdeau)—जैसे हममे से कुछ थोड़े से लोग धार्मिक, सरल, सुशील, शान्त, क्षमाशील, और औरों की सहायता करनेवाले हैं—जो यह दिखा रहे हैं कि मनुष्य-जाति में अच्छी से अच्छी योग्यता क्या हो सकती है ऐसे ही बहुत से हो जाँय, तो संसार के सुखी होने मे बहुत थोड़ी कसर रह जायगी, और समाज की यह आदर्शिक अवस्था बनाने के लिए हमें इतना ही करना होगा कि अपना स्वभाव बदल दें।

जे.पयो (G. Payot)—कैसी अच्छी बात हो जो हमारे विद्यालयों से दस-दस लड़के हर साल हकीम, वकील या अध्यापक होकर अपने-अपने गाँवों को चले जायँ और छोटे से छोटे मनुष्य के आदर करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करें और डर छोड़कर पूर्ण शक्ति से, बिना प्रतिवाद किये, अन्याय का कोई काम बचकर जाने न दें। सामाजिक व्यवहार मे अधिक सुशीलता, बराबरी और सहनशीलता का प्रचार करे तो बीस ही बरस मे ऐसा प्रबल शासक-समाज उठ खड़ा होगा जिसका सब आदर करेंगे, जो जनता के सुखसाधन मे शक्तिमान् रहेगा और देश के कोने-कोने मे आनन्द ही आनन्द भर जायगा।

जीवन से पूरा लाभ पाना हो तो जीवन का एक उद्देश बना लो। उद्देश ऐसा हो जिसके साधन में हमारे सारे उद्योग निरन्तर हुआ करे।

गोडिन (Godin)—जीवन का नियम केवल व्यक्तिमात्र या जातिमात्र का नहीं है। यह सार्वलौकिक नियम है और व्यक्ति और जाति की सहयोगिता इसी के आश्रित है।

अपने जीवन के मूल नियमो के प्रतिकूल न करने के लिए यह उचित है कि मनुष्य अपने जीवन की रक्षा, उसकी परिणति और उसके सँभाल पर ध्यान रक्खे। परन्तु उसकी योग्यता की जाँच उसके ऐसे कामों से की जायगी जिनसे बड़े से बड़े परिमाण का जीवन परिणत करने मे उसने सहायता की है। इस कारण अपने ही लिए काम करने से पूरा न पड़ेगा।

मनुष्य का यह भी काम होना चाहिए कि अपने भाइयों और उसके आसपास प्रकृति मे जो जीवन है उनके भरण-पोषण, उनकी परिणति और उनके सँभाल मे लगा रहे। यही मनुष्य जीवन का उद्देश है, यही उत्कर्ष है। पृथिवी पर जीवन मात्र को एक मानकर उसकी समृद्धि हो, जिससे वह विश्वजीवन के स्थिर रहने और सँभलने मे सहयोग करे। इसी मे एक-एक व्यक्ति कुछ न कुछ कर रहा है।

गोडिन (Godin)—सबसे बड़ा सिद्धान्त सदा यह रहेगा कि तुम्हारे भीतर और बाहर तुम्हारे और मनुष्यमात्र के जीवन की रक्षा हो, उसकी परिणति हो और साम्य रहे और तुम्हारे जीवन के सारे काम, जो जीवन के उपयोगी रहे हैं, लेखे मे तुम्हारे नाम लिखे जायँगे।

एपिक्टिटस (Epictetus)—हम लोग अच्छे सिद्धान्त लिखते हैं पर हममे वे सब व्याप्त नहीं हैं इसीसे उनके अनुसार काम नही करते।

———

४—मौत

तुम समझते हो कि मरते समय हमको बड़ा कष्ट होगा, इसी को सोचकर तुम डरते हो।

याद रक्खो कि बहुत कम ऐसा हुआ है कि मरने में पीड़ा हुई हो। तुम्हारा अन्त होने से पहले तुमको ऐसा सुख मिलेगा जैसा पीड़ा दूर होने पर मिलता है और पीड़ा का तो नाम भी न रहेगा। बात यह है कि रक्त से कार्बोनिक ऐसिड (Carbonic Acid) का निकलना बन्द हो जाता है और पीड़ा अनुभव करने की शक्ति ही नहीं रह जाती। यह गैस शरीर में व्याप्त होकर तुमको ऐसे ही सुला देगी जैसे कोई नशा खा लिया हो। जब व्यथा से छुटकारा मिल गया तब तुम समझोगे कि तुम चंगे हुए जाते हो और तुम सोचने लगोगे कि आगे क्या करना होगा और फिर तुम सुख से सदा के लिए सो जाओगे।

तुमको ऐसा भ्रम न भी हो और तुम्हारा चित्त अन्त तक स्वच्छ रहे तो भी बिना डर, चिन्ता या घबराहट के मौत की राह देखोगे। तुमको डर किस बात का है? जैसे संसार में सब कुछ होता है वैसे ही मौत भी आयेगी। शान्त चित्त से इसकी प्रतीक्षा करो। यही प्रकृति का नियम है। प्रकृति ने हमें मौत से डरना सिखाया है परन्तु जब जीवन की आशा नहीं रहती तो मौत का डर भी जाता रहता है। जब तक मौत

से बचने की सम्भावना रहती है, जब तक हमारे उपाय काम करते हैं, तब तक उसका डर रहता है। परन्तु जब यह सम्भावना न रही तो डर भी भाग जाता है।

जब अन्त दूर रहता है तब मौत का डर प्रकृति की चतुराई है। मौत का डर न होता तो हम लोग बात-बात पर मरने को तैयार हो जाते और न भी होते तो इससे बचने का उपाय न करते। परन्तु प्रकृति की इच्छा है कि जीवन बना रहे। प्रकृति का यह भी स्वभाव है कि पीड़ा, जहाँ तक हो सके, कम हो। इसी से जब चेष्टा करने से लाभ नहीं देख पड़ता तो डर छूट जाता है। उस समय जीने की भी इच्छा नष्ट हो जाती है। जब जीवन का प्याला भरा-पुरा है तो मौत डरावनी लगती है। ज्यों-ज्यों अन्त की घड़ी नियराती है, मौत की भयानकता भी घटती जाती है।

तुम कभी किसी कुटुम्बी के पास मरते समय रहे होगे तो तुमने देखा होगा कि उसके शरीर में नाड़ी छूटने से अङ्ग ढीले पड़ रहे हैं और गले मे कफ़ अटक रहा है। तुम्हारे हृदय में उसके लिए करुणा आ गई और मन में घबराहट हुई कि हमारी भी यही गति होगी। घबराहट किस बात की? मरते मनुष्य के अङ्गों का सङ्कोच केवल स्वाभाविक शैथिल्य है, इसमें पीड़ा का नाम नहीं। और साँस जो रुक-रुक कर आती है उसमें कष्ट नहीं होता। मौत के निकट आते ही शारीरिक और मानसिक सारी पीड़ाएँ नष्ट हो जाती हैं।

क्या तुम इसका प्रमाण चाहते हो? तो उनसे पूछो जो मौत के द्वार से लौट आये हैं। वे तुमको बता देंगे कि उनको पीड़ा की सुध नहीं है और जो कुछ उन्होंने अनुभव किया था वह ऐसा ही था मानो शान्ति के साथ नींद आ रही थी।

मरने से थोड़ी देर पहले विलियम हण्टर (William Hunter) ने कहा था:—"हम मे क़लम थामने की शक्ति होती तो हम लिखते कि मरना कैसा सरल है और इसमें कितना आनन्द है।"

परन्तु तुम कहोगे "सब मनुष्य रोग से नहीं मरते, कितने ही तो आकस्मिक घटनाओं से मर जाते हैं।" तुम समझते होगे कि ऐसी मौत में पीड़ा होती है। लेकिन यह बात नहीं। इसमे और भी कम पीड़ा होती है। हम तो यहाँ तक कहने को तैयार हैं कि उसमें पीड़ा होती ही नहीं। सुनो तो, लिविंगस्टोन (Livingstone) क्या कहता है— "जब सिंह मुझ पर चढ़ बैठा था और मेरे कन्धे को फाड़ रहा था और मेरे सिर को अपने जबड़ों से चूर-चूर करने मे लगा था उस समय मैं सब देख रहा था परन्तु न डर लगता था, न पीड़ा होती थी। डर का तो मुझको ज्ञान भी न था। मैं सावधानी से उस पशु को ताक रहा था।"

सिंह और बड़े-बड़े जीवों के शिकारी भी ऐसा ही कहते हैं।

गाड़ी, मोटर, बैसिकिल आदि से जिनको चोट लगती है वे भी कहते हैं कि उस समय न डर लगता है न पीड़ा होती है। एक प्रकार का अचम्भा सा हो जाता है। इसी से हम अनुमान कर सकते हैं कि घटना होते ही मौत आ जाय तो किसी प्रकार का दुःख न हो।

अब हम इस विषय का एक उदाहरण और देंगे। यह सर फ्रांसिस यङ्गहस्बैण्ड (Sir Francis Younghusband) का है जिन्होंने तिब्बत मे वीरता दिखाई थी।

"मैं एक दिन छुट्टी मे स्विटज़रलैण्ड (Switzerland) गया। नगर से तीन मील पर वायुयान-सञ्चालन की एक सभा हुई थी। वहाँ से हम लोग कुछ पैदल, कुछ मोटरों पर, लौटे आ रहे थे। पटरी न थी, इससे हम लोग सड़क ही पर आ रहे थे। एकाएक हमारा साथी बोल उठा 'देखो!' सोचने का समय ही न था। पहियों के नीचे कुचल जाने से बचने के लिए यही सूझा कि हवा मे उछल जायँ। इतने ही मे मोटर मेरे ऊपर चढ़ बैठा। मैं समझता था कि पहियों से लड़ रहा हूँ और पहिये मुझे नचा रहे हैं। अपने को बचाने के लिए मैं हाथ-पाँव मारता रहा...।

"क्या मौत आ ही गई थी? जान तो कुछ ऐसा ही पड़ता था। मोटर तो अत्यन्त ही निठुर था। उससे लड़ना व्यर्थ था। मौत आ जाती तो बिना पीड़ा के मर जाता क्योंकि उस समय पीड़ा का अनुभव होता ही न था। बिना दुःख

और बिना सोच के अन्त हो जाता। बात की बात में सारे जीवन की धारा रुक जाती और उसी के साथ प्रेम के बन्धन खुल जाते। जीवन में जो आशाएँ पूरी न हुई थीं, सब मिट जातीं, मनोरथों की समाप्ति हो जाती और स्विच (Switch) दबाने से बिजली के लम्प की भाँति जीवन का दीप बुझ जाता—ज्योति जाती रहती परन्तु पीड़ा न होती।

"परन्तु मौत न आई। मैं सड़क पर दूर फेंक दिया गया। वहाँ अचम्भित बैठा रहा। सब कुछ देखता-सुनता था, परन्तु पीड़ा न थी। इतना ही ज्ञान था कि एक भयानक दुर्घटना हुई है और मेरे प्यारे बच्चे और प्रेमी इष्ट-मित्र सुनेंगे तो उनको बड़ा दुःख होगा। मैं चेष्टा-हीन जड़ की भाँति भीड़ को देखता रहा जो मोटर के चारों ओर इकट्ठी हो गई थी। मोटर मे बैठी हुई स्त्रियों के चेहरों पर घबराहट थी। पुलिस वाले घटना का विवरण लिख रहे थे। परन्तु मुझे इस बात का ज्ञान न था कि मुझे चोट कहाँ लगी या कैसी लगी या लगी भी। इतने में मेरा साथी बोल उठा, 'टाँग टूट गई'। तब मैंने देखा कि मेरी टाँग मेरे नीचे मुड़ी हुई है। किन्तु मुझे पीड़ा नहीं थी।* मुझे तो एक आनन्द सा था कि बड़ी

---

* क्या अफ़ीम खाने से भी मनुष्य की ऐसी दशा हो जाती है? कथा प्रसिद्ध है कि दो अफ़ीमची एक छज्जे पर सो रहे थे। उनमें से एक सोते-सोते नीचे गिर पडा तो चौंककर अपने साथी से कहने लगा—"क्यों भाई, हम गिरे कि तुम? धमाका तो बड़े ज़ोर से हुआ।"

सुगमता से पालथी मारकर बैठा हूँ। टाँग तो मोम की सी हो गई थी। मैं सोचने लगा कि टाँग तो टूट ही गई और भी तो कहीं चोट नहीं लगी।

"उस समय किसी प्रकार की खपाच बाँधने का प्रबन्ध न हो सका। मुझे लोगों ने मोटर पर बिठा दिया। खड़-बिड़े पत्थरों की सड़क के अन्तिम मील में गाड़ी मे बड़े झोंके लगते थे और जब-जब मोटर उछलता, मैं चौंक पड़ता था।

"मेरी टाँग की दोनों हड्डियाँ टूट गई थीं और उनके टुकड़े मांस मे चुभ गये थे; नसे, पेशियाँ सब फट गई थी और दूसरे घुटने पर बड़ा गहरा घाव था।"

अल्पूस (Alps) पहाड़ के चढ़नेवाले एडवर्ड ह्विम्पर (Edward Whymper) ने मैटरहर्न (Matterhorn) मे अपने गिरने का ब्योरा यों लिखा है:—

"मेरे हाथ से लकड़ी उछाल दी गई और मैं धमाधम नीचे गिरता चला। पहले थोड़ी दूर पर गिरा, पीछे के पतनों की दूरी बढ़ती गई। कभी बर्फ़ पर गिरता, कभी पत्थर पर। तीन चार बार मेरा सिर टकराया और ऐसा जान पड़ता था कि पिछली टक्कर अगली से दूनी कड़ी लगी। मुझे याद है, मैं सोचता था कि दूसरी टक्कर इससे बढ़कर हुई तो जान

उसका साथी छज्जे को टटोलकर बोला—"नहीं भाई, हम तो नहीं गिरे।" यह सुनकर गिरे हुए महाशय ने कहा—"तब तो आहि रे!"

न बचेगी। डूबते से निकाले हुए लोगों की भाँति मुझे याद है कि कितनी बातें मेरे मन में आईं, कुछ बिना सिर-पैर की जिन्हें मैं भूल चुका था। विचित्रता यह थी कि यह अन्तरिक्ष की कूद-फाँद बुरी नहीं लगती थी। इतना मैं कह सकता हूँ कि कुछ थोड़ी ही दूर पर इन्द्रियज्ञान और चेतना-शक्ति दोनों जाते रहे। और कोई माने या न माने, इसी से मुझे विश्वास होता है कि बड़ी ऊँचाई से गिरकर मरने मे पीड़ा नहीं होती।"*

अमीरुलबहर बोफ़ोर (Beaufort) जवानी में पानी मे गिर पड़े थे। वह कहते हैं—"जब मैंने हाथ-पाँव मारना बन्द कर दिया तो चित्त की घबराहट के पीछे कुछ शान्ति सी प्रतीत हुई। डूबकर मरना मुझे बुरा नहीं लगता था। इससे मेरे चित्त मे उपेक्षा का भाव था, न कि ईश्वर की इच्छा का अनुवर्त्तन। मुझे बचने की आशा न रही और मुझे कोई दुःख भी न हुआ। सच तो यह है कि मुझे कुछ सुख का सा अनुभव होता था जैसा कि कोई थका-माँदा मनुष्य सो जाने से पहले शान्तभाव से ऊँघने मे पाता है।"

डाक्टर मकेन्ना (Dr. Mackenna) कहते हैं†-"एक लड़का, जो एक ऊँचे मकान की छत पर से गिर पड़ा और बहुत थोड़ी सी चोट खाकर दैवयोग से बच गया था, मुझसे कहने लगा—

---

* Scrambles amongst the Alps. (आल्प्स की चढ़ाइयाँ)।

† Adventures of Death (मौत की घटनायें)।

'इतनी उँचाई से गिरने मे मुझे कोई डर नहीं लगा, यद्यपि उँचाई अनन्त जान पड़ती थी।' तीन डाकृरों ने भी, जो भिन्न-भिन्न अवस्थाओं मे डूबने से बाल-बाल बचे थे, मुझे यह बताया कि जब मौत का निश्चय हो गया तब डर जाता रहा। एक कहता था कि सबसे बड़े सङ्कट के समय उसे उपेक्षा सी हो गई थी और किसी प्रकार की चिन्ता न रही थी। जब उसे लोग निकालने लगे तब उसे यह खटका हुआ कि उसके पास डोंगी समय पर पहुँच जायगी या न पहुँचेगी। जब तक बचने की आशा न थी, डर का नाम न था। दूसरे ने कहा, 'जब हाथ-पाँव में शक्ति न रही तो प्रचण्ड लहर में बह जाने की घबराहट जाती रही और उपेक्षा की शान्त दशा हो गई। बेसुध होने से पहले मेरे मन मे आनन्द के-से भाव आने लगे। मैंने देखा कि एक मनुष्य समुद्र तट से पानी मे बडी तेज़ी के साथ वीरता दिखाता हुआ घुसा। यद्यपि उसका संकल्प निश्चित नहीं जान पड़ता था और पानी मे भीगकर वह फिर तट पर लौट गया। यही अन्तिम बात थी जिसकी मुझे सुध है और इसके देखने से मैं सोचने लगा कि क्या दिल्लगी है'।"

लन्दन के प्रसिद्ध डाकृर सर जे. गुडहार्ट (Sir J. Goodhart) जब गाई (Guy's) अस्पताल के डाकृर थे तब उन्होंने दाई से प्रबन्ध किया था कि प्रत्येक रोगी के मरते समय वे बुला लिये जाया करें। वे कहते हैं "मैं अपने धर्म का पालन करने के अतिरिक्त इसकी भी खोज करना चाहता था कि मरने

के पहले मनुष्य की क्या दशा होती है। बड़ी छान-बीन के पीछे मुझको इतनी सान्त्वना मिली कि रोगी के लिए मरने मे कोई डर नहीं है। इस बात को मैं बार-बार कहूँगा कि मुझे निश्चय है कि यह सच है और यह जानने से सुख होता है—यद्यपि लोगों का विचार इसके विरुद्ध है—कि रोग से मरनेवाले को मौत मे कोई बात भयानक नहीं देख पड़ती। इस लोक और परलोक के बीच का परदा एक पतले बादल सा है और देखते-देखते जीव उसके पार हो जाता है।" *

जिन लोगों ने बहुतों का मरना देखा है वे इस बात पर सहमत हैं कि कभी-कभी अन्तिम परिवर्त्तन का समय जानना बहुत कठिन है क्योंकि जीवन का मरण मे परिवर्त्तन बड़ी शान्ति के साथ, बहुत ही धीरे-धीरे, होता है। ऐसा कोई वैद्य नहीं जिसने मृत्यु-शय्या के पास रुक-रुक कर चलती हुई नाड़ी पर हाथ रक्खे हुए, लोगों को चुप किये हुए, मौत को धीरे-धीरे आते नहीं देखा और जब तक उसने अपना स्टेथा-स्कोप (Stethoscope) छाती पर नहीं रक्खा, उसको निश्चय हुआ हो कि जीवन का दीपनिर्वाण हो गया। बुड्ढों मे विशेष करके यह बड़ा परिवर्त्तन इसी तरह होता है; धीरे-धीरे नींद सी आती है और सुषुप्ति की अवस्था बढ़ती जाती है और जैसा कि यूनानी विद्वान् डायोजिनिस (Diogenes) ने कहा

---

* هستی سے عدم تک نفس چند کی هے راه
دنیا سے گذرنا سفر ایسا هے کہاں کا "

है, एक भाई दूसरे के गले लगता है और निद्रा मृत्यु के रूप में बदल जाती है। बहुधा यह देखा गया है कि नींद से सपना हुआ और सपना बदल कर मृत्यु हो गई।

बच्चे का मरना बहुधा जान ही नहीं पड़ता और यह भी देखा गया है कि कभी-कभी कितनी ही अवस्था क्यों न हो, कोई जानता ही नहीं कि मौत कब आ गई।

जैसा कि बहुतों ने अनुभव से जाना है, यह अनुमान किया जाता है कि कोई ऐसी करुणा से भरी हुई कल है जो आकस्मिक घटनाओं में वही काम करती है जो रोग में कारबोनिक ऐसिड गैस।

इससे यह सिद्ध हुआ कि रोग में पीड़ा और दुख हो सकता है परन्तु मरने में दुख नहीं होता।

मृत्यु ऐसी ही पीड़ा-रहित है जैसी शान्त और गहरी-नींद।

एल. बोर्डो (L. Bourdeau)—"मनुष्य को उचित है कि मृत्यु को ईश्वरेच्छानुवर्त्तन समझे। अच्छा तो यह हो कि धैर्य और अनुज्ञा के साथ मौत का सामना करे। मृत्युरूपी बिच्छू का डंक तोड़ने के लिए बिना चीं-चपड़ किये उसके आगे सिर झुकाने से पूरा नहीं पड़ता। उसका मुस्काते हुए स्वागत करना चाहिए। बुद्धिमानी की पराकाष्ठा इसमें है कि मरने की आवश्यकता और उपयोगिता दोनों समझ ली जायँ और उस नियम का अनुमोदन किया जाय जिससे हमारा अन्त नियत किया गया है। हमको अपना अनिवार्य कर्त्तव्य, अपना

उचित ऋण, और अपना अन्तिम धर्म मानने से मौत एक नैतिक कार्य हो जाती है। और ऐसी ही यह आदिष्ट है। इससे लाभ यह होगा कि धार्मिक अन्त शान्त और सुखद होगा। अपने चित्त को झूठे मन-गढ़े हुए भय से शुद्ध कर दो और प्रकृति के नियम से जैसे सब कुछ नित्य हुआ करता है वैसा ही इसको भी समझो और जब अन्तिम घड़ी आ जाय तब शान्त होकर अनन्त विश्व में समा जाओ। जीवन को विश्व के तथ्य मे चणिक सम्भोग समझो और मौत को ऐसा ही मानो जैसे जीवन का पुनर्भव मानते हो कि जो कुछ प्रमेय है वह अनन्त अप्रमेय मे समा जायगा। हमको जानना चाहिए कि जीना कैसे होता है और मरने के लिए तैयार रहना चाहिए।

मार्कस औरीलियस (Marcus Aurelius)—मौत से घृणा न करो। मरना ईश्वरेच्छानुवर्त्तन समझो क्योंकि प्रकृति की यही इच्छा है। क्या हम लोग बच्चे से किशोर और किशोर से जवान नही हुए? हम बढ़ते हैं, हमारे दाँत निकलते हैं। दाढ़ी निकलती है, बाल पक जाते हैं। जैसी ये प्राकृतिक घटनाएँ हैं वैसी ही मौत भी है। हमारी जीवन-यात्रा का यह अन्तिम पड़ाव है। इसी लिए बुद्धिमान् को उचित है कि न तो मृत्यु से घृणा करे, न उसको बुरा समझे और प्रकृति का एक नियम समझकर उसकी राह देखा करे।

मौत है क्या? हमारे मस्तिष्क ने जो-जो इसके आवरण गढ़ रक्खे हैं उनको हटाकर इसको ध्यान से देखें तो यह भी

प्रकृति का एक कार्य है और प्रकृति के कार्य से डरना मूर्खता है। एक बात इससे भी बढ़कर है—यह केवल प्रकृति का कार्य नहीं है वरन बड़े लाभ का कार्य है।

एपिक्टिटस (Epictetus)—कभी न कभी मौत ज़रूर आयेगी। उस समय हम किस काम मे लगे होंगे? किसान खेती मे लगा होगा। माली बाग़ के काम में फँसा होगा, व्यापारी व्यापार में व्यग्र होगा, आप बताइए, अपनी अन्तिम घडी में आप क्या करते होंगे? मुझसे पूछो तो मेरी प्रबल इच्छा यह है कि मैं अपनी इच्छा-शक्ति को सुधारने मे लगा रहूँ जिससे कि मैं इस अन्तिम कार्य को स्वतन्त्र मनुष्य की भाँति बिना रोक-टोक और बिना घबराये हुए पूरा कर दूँ।

मार्कस औरीलियस (Marcus Aurelius)—प्रकृति जो कुछ करती है हमारी भलाई के लिए करती है।

हे विश्व, जो कुछ तुम्हें अच्छा लगता है वह हमे भी अच्छा लगता है। तुम्हारे लिए जो अवसर की बात है उसको हम न कहेंगे कि अबेर-सवेर हुई। काल जो कुछ अपने साथ लाये उसको हम मीठा फल समझ कर ग्रहण करेंगे। प्रकृति, तुझ ही से सब कुछ निकला, तेरा ही सब प्रादुर्भाव है और तुझी में सब समा जायगा*।

---

* अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते।
इतिमत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥

(भगवद्गीता १०—८)

याद रक्खो, तुम समष्टि के द्वारा जी रहे हो—समष्टि ही मे जी रहे हो—श्रौर समष्टि के लिए जी रहे हो—तुम केवल समष्टि के जीने के लिए जी रहे हो। इसका बड़ा प्रमाण यह है कि तुमसे पहले जो अनन्तकाल बीत गया है श्रौर तुम्हारे पीछे जो अनन्त काल बीतेगा उसके आगे तुम्हारा व्यक्तिगत जीवन बहुत ही छोटा श्रौर क्षणमात्र का है। तुम सौ बरस जियो तो भी तुम्हारा जीवन इस अनंत मे बिजली के कौंधे की भाँति होगा। यह मानना कि तुम अपने ही लिए जी रहे हो या यह कि सारी वस्तुएँ तुम्हारे लिए बनाई गई हैं, ऐसा ही व्यर्थ है जैसे बिजली का समझना कि मैं अपने ही लिए तड़प रही हूँ या पृथिवी श्रौर बादल इसी लिए बने हैं कि अनन्त के बीच एक क्षणमात्र के लिए अपना रूप दिखा दे।

मनुष्य श्रौर कौंधा दोनों समष्टि के जीवन के अंश हैं। इनका प्रयोजन यह है कि विश्व के कार्यक्रम मे आप भी कुछ करें जिससे कि विश्व के जीवन का निर्वाह हो। बिजली श्रौर मनुष्य मे भेद यही है कि मनुष्य इस सहयोगिता को प्रेम श्रौर बुद्धि से कर सकता है।

विश्व शक्ति का बड़ा भारी भाण्डार है श्रौर मनुष्य उसका अणुमात्र अंश है। यह अणुमात्र अंश बहुत थोड़े समय के लिए अपने व्यक्तिगत जीवन को व्यक्त करके समष्टि मे समा जाता है। जब मरना उसी समष्टि मे समाना है, जिसमें से तुम निकले थे तो फिर मैात का डर क्या है ?

मार्कस औरीलियस (Marcus Aurelius)—इस समय तुम समष्टि के अंश होकर जी रहे हो। कुछ दिन मे तुम उसी में समा जाओगे जिसने तुमको प्रकट किया था यों कहो कि बदल कर फिर उसी की उत्पादक शक्ति तुम्हे दूसरे साँचे में ढाल देगी।

हमको ईश्वरेच्छानुवर्त्तन करते हुए संसार से ऐसे ही कूच करना चाहिए जैसे पक्के फल को उचित है कि धरती पर गिरकर अपनी माता की बड़ाई करे और अपने जन्मदाता वृक्ष को धन्यवाद दे।

मौत सिर पर खड़ी है, जब तक जीते हो और जब तक तुम में शक्ति है, सज्जन बनने का प्रयत्न करो।

याद रक्खो कि मौत सबकी घात मे है, तुम्हारी और जो तुम्हारे आसपास हैं उनकी भी। देखो, अवसर न चूको, सबसे प्रेम करो नहीं तो पछताओगे।

जीवन से पूरा प्रेम रक्खो परन्तु मौत से न डरो। अपने लिए तो इसका डर छोड़ ही दो। तुम्हारे मरने से उन्हीं को कदाचित् दुख होगा जिन्हें तुम छोड़े जाते हो। यही एक बात है जो अन्त समय मे तुम्हारे शोक का कारण हो सकती है।